नाम या शब्द
भाग–2

आदि में शब्द था...

कृपाल सिंह

‘नाम या शब्द’

भाग-2

मूल पुस्तक :

Naam or Word, 1960

हिन्दी अनुवाद :

प्रथम संस्करण : 1985

वर्तमान संस्करण : 2021 (**संशोधित**)

समर्पण

समर्पित है सर्वशक्तिमान परमात्मा को,
जो सभी पूर्ववर्ती संत–महापुरुषों के रूप
में कार्य करता रहा है तथा परम संत
हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज को,
जिनके पावन चरणों में बैठकर लेखक
ने पवित्र नाम–शब्द का परम–मधुर
अमृत–रस–पान किया।

प्रजापतिर्वै इदमग्रमासीत्,
तस्या वाक् द्वितीयो आसीत्,
वाग्वै परमं ब्रह्मः।।

— सामवेद (ताण्ड्य महाब्राह्मण 20:14.2)

अर्थात सृष्टि के आदि में सृष्टिकर्ता, प्रजापति ब्रह्म था; उसके साथ 'वाक्' या 'शब्द' था और 'वाक्' ही परम् ब्रह्म था।

***

आदि में 'शब्द' था, और 'शब्द' परमात्मा के साथ था और 'शब्द' ही परमात्मा था।

— सेंट जॉन

विषय-सूची

भाग – 1

अध्याय – 1

अध्याय – 2

अध्याय – 3

अध्याय – 4

अध्याय – 5

भाग – 2

अध्याय – 6

अध्याय – 7

अध्याय – 8

अध्याय – 9

अध्याय – 10

अध्याय – 11

अध्याय – 12

अध्याय – 13

अध्याय – 14

अध्याय – 15

अध्याय

: **6** :

शब्द

'*संस्कृत* में 'शब्द' एक धातु है, पर अन्य अक्षरों की भाँति हमें इसके उद्‌गम का पता नहीं है। इसका अर्थ है आवाज़, अक्षर, कलाम, इस्म, ज़मीर (सार), वचन (बोले हुए अक्षर), वज़ाहत (वर्णन करना), सराहत (स्पष्ट करना), इज़हार (प्रकट करना), तक़रीर (भाषण) आदि–आदि। जो कुछ भी बोला या सुना जाए, वह 'शब्द' है और यह हमें वस्तुओं के असली रूप के बारे में और उनमें छुपी ख़ासियतों के बारे में बताता है। पर संतों की भाषा में 'शब्द' का बहुत ही गूढ़ अर्थ है, जो आम प्रचलित अर्थ से एकदम भिन्न है।

'शब्द' प्रभु है, चेतन सिद्धांत है :

सृष्टि के बनने से पहले 'शब्द' गुप्त था, 'अनाम' था। इस हालत में यह अपने आप में स्थापित था और इसलिए 'अशब्द' (शब्द–रहित) था, 'अनाम' (नाम–रहित), 'अलख' (समझ के परे), 'अगम' (कल्पनातीत), 'अकह' (उच्चारण के परे) और 'अकथ' (अवर्णनीय) था। जब यह इज़हार में आया (प्रकट हुआ), तो 'शब्द' या 'नाम' कहलाया।

शब्द गुप्त तब हुआ अनाम,
शब्द प्रकट तब धरिया नाम।।

— स्वामी शिवदयाल सिंह जी, सार–बचन, पद्य (9:3)

इसके प्रकट होने से पहले, कोई रूप रंग नहीं था, न ही कोई सूर्य, चन्द्रमा, आसमान या धरती थे, क्योंकि तब 'शब्द' निराकार रूप में स्वयंस्थित था। 'शब्द' का सार विशुद्ध चेतनता है। यह संपूर्ण सृष्टि का

सक्रिय जीवन–सिद्धांत है। यह सम्पूर्ण अस्तित्व की पृष्ठभूमि में कार्यरत मार्गदर्शक व नियन्त्रणकारी सत्ता है। सब कुछ जो व्यक्त हुआ है, 'शब्द' के आसरे है और उसके बिना कुछ भी अस्तित्व में नहीं रह सकता। यह ('शब्द') हर वस्तु का जीवन–तत्त्व है। यही संपूर्ण जगत् की पथ–प्रदर्शक नियंत्रक शक्ति है। समस्त वस्तु 'शब्द' के कारण व्यक्त है तथा उसके बिना कुछ भी अस्तित्व में रह नहीं सकता। मुसलमान दरवेश इसे 'जौहर' कहते हैं और हिन्दू संत इसी को 'मूल'। यह हर दृष्ट और अदृष्ट आकृति में अंतर्निहित व व्याप्त चेतन सिद्धांत है। यह जीवन का 'कारणरहित कारण' है, यह शाश्वत स्वयंभू जीवन है, जो समय के साथ–साथ अन्दर–बाहर दौड़ता रहता है। यह रचनात्मक शक्ति की ही आत्मा है और हर जगह रमा हुआ है, यहाँ तक की शुद्ध आत्मिक मंडल– सचखंड तक। यही उत्पत्ति और प्रलय– दोनों का मूल कारण है।

उतपति परलउ सबदे होवै।।
सबदे ही फिरि ओपति होवै।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰ 3, पृ॰117)

सभी वस्तुओं का आदि और अंत 'शब्द' ही है। सभी स्थूल तत्त्व, सूक्ष्म और अलौकिक शक्तियाँ व स्पन्दन, कारण बीज तथा सार तत्त्व– सब कुछ 'शब्द' से ही बने हैं और सभी 'शब्द' के व्यक्त स्वरूप हैं। हम 'शब्द' में ही जीते हैं, इसी में हमारा व्यक्तित्व है और अंत में इसी में समा जाते हैं। संसार की सारी धर्म पुस्तकें यही बताती हैं कि 'शब्द' दक्ष व उपादान कारणों से ऊपर है और सृष्टि को संपूर्ण रूप से नियंत्रित करने वाली शक्ति है।

आपे कवला कंतु आपि।।
आपे रावे सबदि थापि।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰1, पृ॰1190)

पुरखु सुजानु तूं परधानु तुधु जेवडु अवरु न कोई।।
तेरा सबदु सभु तूं है वरतहि तूं आपे करहि सु होई।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰448)

'शब्द' क्या है? :

यह एक ऐसा विषय है, जिसे हम असंगत तर्क–वितर्क के द्वारा नहीं समझ सकते हैं। समझने के लिए सिर्फ़ यही कहा जा सकता है कि 'शब्द' मालिक की परिपूर्ण सत्ता है, जिसने प्रभु की संपूर्ण विशाल सृष्टि के भिन्न–भिन्न खंडों–ब्रह्मंडों को पैदा किया है और उनको अस्तित्व में लिए खड़ी है। यह चेतनता के महासागर की एक धारा है, जो ध्वनि–हिलोर के द्वारा इंगित की जाती है। दूसरे लफ़्जों में, यह प्रभु से निकला जीवंत तथा सकारात्मक सिद्धांत है, जो संपूर्ण सृष्टि को जीवन प्रदान करता है। इसी के ज़रिये प्रभु अपनी विशाल सृष्टि को पैदा करता है तथा उसका नियंत्रण एवं पोषण करता है। यह सृष्टि और सृष्टिकर्ता के बीच की जीवन धारा है और इन दोनों को जोड़ने वाले स्वर्णिम सेतु (पुल) का काम करता है। रेडियो की वायवीय तंरगों के समान, शब्द की दिव्य धाराएँ भी वातावरण की समस्त दिशाओं में व्याप्त हैं, जिनसे संगीत की मधुर राग–रागिनियाँ निकल रही हैं। परन्तु, जब तक हम अपने मानसिक यंत्र को नियंत्रित करके अन्तहीन से जोड़ते नहीं, तब तक हम इन सूक्ष्म तरंगों को पकड़ कर दिव्य–स्वरलहरी को नहीं सुन सकते।

ज्यों–ज्यों हम दिव्य शब्द–धुन को सुनते हैं, त्यों–त्यों हम सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते चले जाते हैं। 'शब्द' एक ऐसी डोर है, जो कि इंसान को प्रभु से जोड़ती है। संक्षेप में, 'शब्द' ही सच्चा धर्म है। Religion (धर्म) शब्द का अर्थ ही है, 'वह शक्ति जो हमें वापिस प्रभु से जोड़ती है।' प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियाँ इसी 'शब्द' या 'शब्द–सिद्धांत' के माध्यम से काम करती हैं। प्राण, जो सभी प्रकार की सक्रिय– विद्युत, यांत्रिक, चुम्बकीय या आणविक– ऊर्जाओं का स्त्रोत हैं, इस भौतिक मंडल में 'शब्द–धारा' के बाहरी रूप हैं। जिस तरह वातावरण में हर प्रकार की विद्युत तरंगें विद्यमान हैं, उसी तरह 'शब्द' अपने सूक्ष्मतम रूप में हर जगह पूर्णतया व्याप्त है, और इस प्रकार यही 'कर्ता' भी है। गुरु नानक जी ने जपुजी साहिब में इसे 'हुक्म' कहकर पुकारा है और इसके कार्यों का वर्णन किया है :

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई।।
हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि।।

इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।।
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 2, पृ॰1)

'शब्द' के दो प्रकार हैं– बाहरी या आंतरिक या 'धुनात्मक और वर्णात्मक'। 'वर्णात्मक शब्द' कुछ हद तक 'धुनात्मक शब्द' को इंगित करता है। यह आम अनुभव का विषय है कि जोशीला फ़ौजी संगीत, लोगों के अन्दर हथियार उठाने की प्रेरणा देता है, उदासी भरे स्वर नेत्रों में आँसू भर देते हैं, प्यार के स्वर मन को सम्मोहित कर लेते हैं, निराशपूर्ण स्वरलहरी आत्मा को निराश करते हैं और भव्यता के स्वर भक्ति और प्रभु का श्रद्धा तथा विस्मय पैदा कर देते हैं। और फिर, विवेकवान लोगों की बातें संसार के दुखी मनों पर मरहम का काम करती हैं तथा जले–कटे शब्द दिलों को चीरते चले जाते हैं।

सबदहि मारे मरि गये, सबदहि तजिया राज।
जिन जिन सबद पिछानिया, सरिया तिन का काज।।
एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास।
एक सबद बंदन कटै, एक सबद गल फाँस।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (शब्द का अंग 10, पृ.93)

भला ऐसी कौन सी भावना है, जिसे संगीत उत्पन्न न कर सके या दबा न सके?

– जॉन ड्राइडेन (John Dryden- 'A Song For St. Cecilia's Day')

जब 'वर्णात्मक शब्द' में इतना जादू है, तो 'धुनात्मक शब्द' के अंदर जो कि बहुत सूक्ष्म है और प्रकृति से आलौकिक है, जो ताक़त छिपी है, उसका तो कोई अंदाज़ा ही नहीं लगाया जा सकता। 'आंतरिक शब्द' पवित्र और उत्कृष्ट है और इसमें ऐसी ज़बरदस्त चुंबकीय ताक़त है, जिसके कारण एक मुक्त आत्मा इसकी ओर बेबस खिंची चली जाती है।

'शब्द' सृष्टिकर्ता है :

सभी धामृक ग्रन्थों में 'शब्द' को सृष्टि का कर्ता कहा गया है। वेद हमें बतलाते हैं कि 'नाद' से चौदह भवन बने। कुरान में यह कहा गया है कि

'कलमे' से चौदह तबक़ बने। बाइबिल (नया नियम) में सेंट जॉन लिखते हैं कि 'शब्द' ('Word') ही सारी क़ायनात की उत्पत्ति का मूल कारण है।

आदि में शब्द था, शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था। परमात्मा के साथ आदि से वही था। सभी पदार्थ उसी से बने और उस के बिना कुछ भी ऐसा नहीं था, जो कि बना हो। उसमें जीवन था और वही जीवन इंसानों की ज्योति थी...

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:1-5)

सिक्ख धर्मग्रंथों में भी यही बात बताई गई है— संपूर्ण सृष्टि 'शब्द' से प्रकट हुई है और उसी के द्वारा नियंत्रित की जाती है। सूर्य, आकाश, धरती, स्वर्ग आदि सभी कुछ उस नियंत्रक शक्ति के आसरे हैं, और ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वह न हो। 'शब्द' सृष्टि के रोम–रोम में समाया है।

एको सबदु एको प्रभु वरतै सभ एकसु ते उतपति चलै।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰3, पृ॰1334)

शबदे धरती शबदे आकाश। शबदे शबद भइआ प्रगास।।
सगली सृसटि शबद के पाछे, नानक शबद घटों–घट आछे।।

— जनम साखी, गुरु नानक (भाई बाला)

आपीन्है आपु साजि आपु पछाणिआ।।
अंबरु धरति विछोड़ि चंदोआ ताणिआ।।
विणु थंम्हा गगनु रहाइ सबदु नीसाणिआ।।
सूरजु चंदु उपाइ जोति समाणिआ।।

— आदि ग्रंथ (मलार की वार म॰1, पृ॰1279)

'शब्द' से न केवल सृष्टि की उत्पत्ति होती है, बल्कि विनाश (प्रलय) भी; और फिर, सृष्टि का पुनर्जन्म भी उसी के द्वारा होता है।

उतपति परलउ सबदे होवै।।
सबदे ही फिरि ओपति होवै।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰117)

हिंदू धर्मग्रंथों में इसे 'आकाश का सार' ('Essence of Ether') कहा गया है, जिससे ज्ञात होता है कि यह आकाश से भी सूक्ष्मतर है और सर्वव्यापी है। वास्तव में, इसकी मौजूदगी जड़ और चेतन के मिलन में महसूस होती है, क्योंकि हर मेल में स्पंदन (हलचल) होता है और हलचल 'शब्द' या 'आवाज़' से पैदा होती है, जो कि न केवल अंतरिक्ष में सर्वव्यापी सर्जनात्मक सिद्धांत है, बल्कि अपने ही में सिमट जाने वाला जीवन–सिद्धांत है। प्रभु को भी 'शब्द' कहकर पुकारा गया है, क्योंकि उसकी सत्ता यानी 'शब्द' प्रभु से अलग नहीं, प्रभु और उसका प्रभुत्व या सत्ता ('शब्द') एक समान ही होते हैं।

तेरा सबदु सभु तूंहै वरतहि तूं आपे करहि सु होई।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰448)

समस्त धर्मग्रंथों में, जिनमें संसार के सबसे प्राचीन धर्मग्रंथ, वेद भी शामिल हैं, 'शब्द' को प्रभु की मुख्य अभिव्यक्ति (इज़हार) माना है। सामवेद में हमें मिलता है :

द्वे वा व ब्रह्मणी अभिध्येये शब्दश्चाशब्दश्च
अथ शब्देनैवाशब्दमाविष्क्रियते अथ तत्र ओमिति...
द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये शब्दब्रह्म परां च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।

— मैत्रयणी (मैत्री) उपनिषद् (6:22)

(दो प्रकार के ब्रह्म रूप हैं– शब्द तथा शब्दरहित। शब्दरहित ब्रह्म शब्द–ब्रह्म के द्वारा प्राप्त होता है। यह शब्द ॐ है।... ब्रह्म के दो प्रकार हैं– मूर्त [शब्द–ब्रह्म] तथा अमूर्त [अशब्द ब्रह्म या परब्रह्म]। शब्द–ब्रह्म में नहा लेने से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है।)

मुसलमान दरवेश हमें बतलाते हैं कि दुनिया का अस्तित्व 'शब्द' के कारण ही है। शाह नियाज़ फ़रमाते हैं :

आलम अज सौते–ईं ज़ुहूर गरिफ़्त,
अज़ हजूरश बिसाते–नूर गरिफ़्त।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.91)

(संसार का आगाज़ 'सौत' [शब्द] से हुआ और उससे हर तरफ़ ज्योति निकली।)

आगे, अब्दुल–रज़्ज़ाक़ काशी हमें बताते हैं :

इस्मे–आज़म जामा–ए–अस्मा बुवद, सूरते–ऊ मआनीऐ–अशया बुवद।
इस्म दरया ओ तईय्युन मौजे–ऊ, ईं कसे दानद कि ऊ अज़ मा बुवद।
(’इस्मे–आज़म’ [महान नाम] सभी नामों का सार है। सारी क़ायनात इसी के इज़हार [शब्द] से क़ायम है। यह वो महान समुद्र है, जिसकी हम सब लहरें हैं। जो हमारे मत को मानता है, वही इस रहस्य को समझ सकता है।)

‘शब्द’ पढ़ने, रीति–रिवाज़ या पाठ करने का विषय नहीं है :

आंतरिक ’शब्द धुन’ परम चेतन तत्त्व है और इसकी सूक्ष्मता स्थूल कानों, जिह्वा और क़लम के परे है। यह एक अनलिखा क़ानून और अनबोली भाषा है। यह स्वयंभू, स्वावलंबी और स्वपोषी है, परन्तु जो कुछ भी इस संसार में अस्तित्व में आया है– जानदार और बेजान, सब उसी से ज़िंदगी पाता है। लेकिन इसका अनुभव आत्मा की गहराइयों में ही किया जा सकता है, क्योंकि दोनों की ज़ात एक है– आत्मा महा–चेतनता के समुद्र की एक बूँद मात्र है। सिक्ख धर्मग्रंथों में इसे ’सच्चा–शब्द’ भी कहा है :

सचै सबदि सचु कमावै।।
सची बाणी हरि गुण गावै।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती बिभास म॰1, पृ॰1342)

गुर के चरन मन महि धिआइ।।
छोडि सगल सिआणपा साचि सबदि लिव लाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰51)

गोबिंद भजहु मेरे सदा मीत।।
साच सबद करि सदा प्रीति।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म॰5, पृ॰1192)

अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰139)

महान चीनी संत, लाओ–त्सी इसी के बारे में कहते हैं :

जिस ‘ताओ’ (Tao) का बयान किया जा सके, वह हमेशा रहने वाला नहीं है; जिस नाम को परिभाषित किया जा सके, वह अपरिवर्तनीय नाम नहीं हो सकता।

मौलाना रूम फ़रमाते हैं :

तुर्क–ओ कुर्द–ओ पारसी गो व अरब,
फ़हम क़रदा आँ निदा बे गोशो–लब।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.230)

(तुर्क, कुर्द, पारसी और अरब– सभी लोगों ने बिना होंठों और कानों के उसका अनुभव किया है।)

उपनिषद्‌कार महर्षियों ने इसे 'प्रणव' कहा यानी जिसे होंठ, तालु तथा जिह्वा के बग़ैर ही, प्राणों के हिलोर के द्वारा सुना जा सके, क्योंकि यह स्वयं ही आकाश के अंदर व बाहर, सर्वत्र गुंजायमान है।

संत कबीर साहिब ने इसे 'विदेह' कहा क्योंकि यह स्थूल अस्तित्व से ऊपर है और आत्मा तभी इसका अनुभव करती है, जब यह शारीरिक बंधनों से ऊपर आ जाए।

सबद सबद सब कोइ कहै, वो तो सबद बिदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करिं देह।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (शब्द का अंग 4, पृ.92)

हज़रत बाहू इस विषय में फ़रमाते हैं :

ज़बानी कलमा हर कोई आखे, दिल दा पढ़दा कोई हू।।
जित्थे कलमा दिल दा पढ़ीऐ, उत्थे जीभाँ मिले न ढ़ोई हू।।

(सब इंसान ज़ुबानी 'कलमा' पढ़ते हैं, जो मुँह से निकले लफ़्ज़ों से पढ़ा जाता है। कोई विरला ही 'विचार की ज़ुबान' से उसे पढ़ता है; और जो कोई उसे मोहब्बत और इबादत [भक्ति] के साथ सुरत की ज़ुबान से दोहराता है, वह इसे लफ़्ज़ों में बयान नहीं कर सकता।)

आगे, वे कहते हैं,

मीम मुरशद हादी सबक़ पढ़ाइआ उह बिन पढ़िऔ पिआ पढ़ीवे हू।।
उंगलाँ कनां विच दित्तीयाँ बिन सुणिआं पिआ सुनीवे हू।।

(मेरे मुर्शिदे–क़ामिल ने मुझे वह सबक़ सिखाया है, जो बग़ैर पढ़े, पढ़ा जाता है और कानों में अँगुलियाँ दिये बिना सुना जाता है।)

मौलाना रूमी बड़े ख़ूबसूरत लफ़्ज़ों में 'शब्द' के बारे में फ़रमाते हैं :

ऐ ख़ुदा बनुमा तू जाँ रा आँ मक़ाम,
क–अन्दरू बे हर्फ़ में रुयद कलाम।

– मसनवी (दफ़्तर 1, पृ.94)

(ऐ ख़ुदा! मेरी रूह को उस पवित्र जगह ले चल, जहाँ पर तेरा पाक 'कलमा' लगातार हो रहा है।)

सभी धर्म 'शब्द' की शिक्षा देते हैं :

सभी धर्मग्रंथों में हमें 'शब्द' या 'रचनात्मक ध्वनि धारा' के हवाले मिलते हैं। हिंदू धर्मग्रंथ इसे 'शब्द–ब्रह्म', 'अशब्द–ब्रह्म' या 'नाद' कहते हैं, जिससे कि सृष्टि की रचना होती है। पुरातन संत–महात्माओं, ऋषियों ने अपनी वाणियों में इसकी महिमा गाई और इसे 'श्रुति' (यानी जो सुनी जाए) कहा। आध्यात्मिक शिक्षाएँ गुरु–शिष्य परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाई जाती थीं और 'शब्द' का व्यक्तिगत अनुभव अनेकों वर्ष की आध्यात्मिक साधनाओं के बाद कराया जाता था। उपनिषदों के युग में (देखिए : छांदोग्य व मैत्रेयी उपनिषद्) इसे 'उद्गीथ' या 'आसमानों का राग' कहा जाता था यानी जो परलोक का हो और इंद्रियों के परे का हो, क्योंकि इसकी धुन को पकड़ने के लिए हमें इनके घाट के ऊपर उठना पड़ता है। अन्य शब्द, जो इसके लिये प्रयुक्त किये गये हैं, वे हैं, 'प्रणव' तथा 'ॐ', क्योंकि यह मानसिक कानों से ही सुना जा सकता है और बिना बाहरी होंठ या जिह्वा की मदद के, इसे प्राणों के हिलोरों के द्वारा गाया जा सकता है। मैत्रेयी उपनिषद् के छठे अध्याय में कहा गया है कि दो प्रकार के ब्रह्म हैं– 'शब्द–ब्रह्म' और 'अशब्द–ब्रह्म'। 'अशब्द–ब्रह्म' तक पहुँचने के लिए पहले 'शब्द–ब्रह्म' का ध्यान करना होता है, जिसमें विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ हैं, जिन्हें कानों को अँगूठों से बंद करके सुना जा सकता है, और इस तरीक़े से साधक 'अशब्द–ब्रह्म' में या 'गुप्त–ब्रह्म' में जा सकता है। यह एक ऐसी अवस्था है, जो कि तीनों गुणों से और तीनों मानसिक अवस्थाओं से परे है और जिसे 'तुरीय–पद' या 'महा–चेतनता' का मंडल कहा जाता है।

योग संध्या नामक ग्रंथ में कहा गया है कि साधना करते समय साधक को चाहिये कि अपने कानों को अँगूठों से बंद करे और अपने अंतर में बजने वाली 'चिदाकाश' या मानसिक क्षितिज की नाद–ध्वनि को सुने

तथा इस प्रकार मन को शांत करे और 'तुरीय अवस्था' को पाये और अव्यक्त में लीन हो जाये।

छांदोग्य उपनिषद् में यह कहा गया है कि अंतर में ब्रह्मांड का सूर्य है, जिसमें से 'नाद' या 'दिव्य–ध्वनि' प्रकट हो रही है और यह रहस्य अंगिरस ऋषि ने देवकी पुत्र कृष्ण को बताया था।

गुरु अमरदास हमें बताते हैं कि भक्त प्रह्लाद का उद्धार 'शब्द' के द्वारा हुआ :

जुगि–जुगि भगता की रखदा आइआ।।
दैत पुत्रु प्रहलादु गाइत्री तरपणु किछु न जाणै सबदे मेलि मिलाइआ।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰3, पृ॰1133)

गीता में कहा गया है :

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियतेह्मवशोऽपिसः।
जिज्ञासुसुरपियोगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।

— श्रीमद्भगवद्गीता (VI:44)

(इंद्रियों के वश में होने पर भी व्यक्ति पहले जन्मों के अभ्यास के कारण बरबस ही प्रभु की तरफ़ खिंचता चला जाता है। इतना ही नहीं, वह 'शब्द–ब्रह्म' को पार कर जाता है।)

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकल्विषः।
अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

— श्रीमद्भगवद्गीता (VI:45)

(जो योगी पहले से ही 'शब्द–ब्रह्म' के योग का अभ्यास शुरू कर देता है, वह इसी जन्म के अंदर ही, पहले जन्मों के अभ्यास के कारण, गुप्त रहस्यों को समझ जाता है और पापों से पूरी तरह मुक्त होकर, परम् गति को प्राप्त करता है।)

नादबिंदु उपनिषद् में कहा गया है :

सिद्धासने समास्थाय मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।
श्रृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादयंतर्गतं सुधी।।

— नादबिंदु उपनिषद् (3:31)

(सिद्ध आसन पर बैठ करके योगी को चाहिये कि वैष्णवी मुद्रा [दोनों हाथों की अंगुलियों द्वारा दोनों कान और आँख बंद करके बैठने को 'वैष्णवी–मुद्रा' कहते हैं] धारण करे और अतंर में दाहिनी ओर से आती हुई नाद–ध्वनि को सुने।)

योग संध्या ग्रंथ में 'शब्द' को सुनने के अभ्यास का विस्तृत वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'शब्द' की प्रशंसा में अनेक मंत्र हैं। अथर्ववेद के हंस उपनिषद् में कहा गया है कि जो 'हंस–मंत्र' का करोड़ बार जप करता है, वह 'नाद' का अनुभव पाता है। यह भी कहा गया है कि 'नाद' की ध्वनि दस प्रकार की होती है, जिनमें से नौ को छोड़ देना चाहिए और दसवीं का– जो कि बादलों के गर्जन जैसी आवाज़ है, अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यही सुदूर पारब्रह्म में ले जाती है।

'शब्द' की प्रशंसा में हठयोग प्रदीपिका में अनेक श्लोक हैं। वेदों में इसे 'नाद' या 'आकाशवाणी' कहा गया है। बौद्ध धर्मग्रंथों में इसे 'संगीतमय ज्योति' ('Sonorous Light') अथवा 'ज्योतिर्मय ध्वनि' ('Flaming Sound') कहा गया है।

पुरातन यूनानी लोगों ने भी 'शब्द' की महिमा गाई है। सुकरात के लेखों में हम पढ़ते हैं कि उन्हें एक आलौकिक आवाज़ सुनाई पड़ी, जो उसकी आत्मा को खींचकर उच्च आध्यात्मिक मंडलों में ले गई। पाइथागोरस ने भी 'शब्द' का ज़िक्र किया है। प्लेटो (अफ़लातून) ने इसे 'मंडलों का राग' ('Music of the Spheres') कहा। यूनानी भाषा में 'शब्द' के पर्यायवाची के लिए 'लोगॉस' (Logos) का प्रयोग मिलता है, जो 'lego' धातु से बना है अर्थात्– बोलना, बात करना, जो कि 'शब्द' या त्रिपुटी (Trinity) का द्वितीय अंग है। इस 'शब्द' का हवाला ईसाई और यहूदी दर्शन और ब्रह्मविद्या में भी मिलता है, और अपने आध्यात्मिक पक्ष में इसका प्रयोग यूनानी तथा नव–अफ़लातूनी ('Neo-Platonist') दर्शन में किया गया है। सेंट जॉन ने 'वर्ड' ('Word') शब्द का प्रयोग किया है। यह 'शब्द' ध्वनि–सिद्धांत है, जो महान ख़ामोशी, 'अशब्द' से निकल रहा है। चीनी धर्मग्रंथों में इसे 'ताओ' ('Tao') कहा गया है। महान चीनी संत, लाओ त्ज़ी ने चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में 'ताओ' (जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'सड़क' या 'मार्ग') शब्द का प्रयोग ब्रह्मांड के गुप्त सिद्धांत के लिए किया। अवेस्ता में पारसी महात्मा ज़रतुश्तु (Zoroaster) के लेखों में, हमें 'स्त्रोशा' शब्द का ज़िक्र मिलता है, जो उस फ़रिश्ते का द्योतक है, जो सृष्टि को पैदा करता है। यह शक्ति उन छः रूहानी शक्तियों से अलग है, जिनका ज़िक्र ज़रतुश्तु

ने किया है। यह अमर जीवन का पंथ है और संस्कृत धातु, 'श्रु' (सुनना) से निकला है जिसका अर्थ है, प्रभु की वह शक्ति, जिसे सुना जा सके। जेंद अवेस्ता में हमें एक प्रार्थना मिलती है, जिसमें 'मज़दा' या मालिक से याचना की गई है कि जिनसे वह (मालिक) प्यार करता है, उन्हें वह 'स्रोशा' दे दे। यह वही है, जिसे संतों की परिभाषा में 'शब्द' कहा गया है।

आधुनिक युग में संत कबीर और गुरु नानक से लेकर गोबिंद सिंह जी तक सिक्खों के दसों गुरु तथा दादू, जगजीवन, तुलसी, दरिया साहिब, बाबा लालदास, पलटू तथा अनेक अन्य संतों ने 'शब्द' का प्रचार किया है।

यहूदी–ईसाई परम्परा की पहली पुस्तक, 'पूर्व विधान' ("Old Testament') में इस संदर्भ में अनेक उल्लेख मिलते हैं। मैडम ब्लावात्स्की ने, जो कि थियोसोफ़िकल सोसाइटी की संस्थापक थीं, इसे 'मौन की आवाज़' ('Voice of the Silence') कहा है। मेसोनिक अर्थात राजमिस्त्री मत (Masonic Order) में यह 'खोया हुआ शब्द' ('Lost Word') कहलाता है, जिसकी तलाश में इस मत के गुरुओं ने इस मत की स्थापना की।

कुरान (36:82) में एक आयत है : प्रभु ने हुक्म दिया कि 'कुन फ़ैयकून' ('हो जा'); और, यह बस हो गया अर्थात् सब संसार की रचना हो गई। वास्तव में, यही मुसलमानों का 'कलमा' है।

सूफ़ी लोग इसे 'वादन' कहते हैं। यह कहा गया है :

गर ब इज़हार रू न आवुर्दे, नामे–आवाज़ ईं जहाँ न बुदे।

(अगर 'अनाम' अपने आप को प्रकट करने की इच्छा नहीं करता और 'नाम' नहीं होता, तो कोई शब्द–ध्वनि नहीं होती और सृष्टि की रचना भी नहीं होती।)

आधुनिक सूफ़ी–संत, हज़रत इनायत खाँ हमें बतलाते हैं कि यह सृष्टि केवल 'परमात्मा का संगीत' है, क्योंकि यही उसी की शक्ति का इज़हार है। वे इसे 'सौते–सरमदी' या अल्लाह के बाग़ीचे का मादक नशा कहते हैं और उन्होंने इस की विस्तृत व्याख्या की है, जैसा कि निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट होता है :

> तमाम आकाश (अंतरिक्ष) 'सौते–सरमदी' या 'ख़ुदा की आवाज़' से भरा हुआ है। इस आवाज़ की तरंगें (स्पंदन) इतनी सूक्ष्म और बारीक़ हैं कि जिस्मानी कानों और आँखों

से उन्हें सुना या देखा नहीं जा सकता। मोहम्मद साहिब ने 'ग़ार-ए-हीरा' की गुफ़ा में इसी 'सौत-ए-सरमदी' (ख़ुदा की आवाज़) को सुना, जिससे वे मस्ती के आलम में खो गये। इस आवाज़ को कुरान में 'कुन-फ़ियु-कुन' (हो जा और सब कुछ हो गया) कह कर वर्णित किया गया है।

सिनाई पहाड़ पर जब (कोह-ए-तूर) हज़रत मूसा प्रभु से मिले, तो उन्होंने इसी 'अनहद ध्वनि' को सुना। जब ईसा मसीह बीयाबान में अपने दिव्य पिता (प्रभु) के ध्यान में तल्लीन हुए, तो उन्होंने भी इसी को सुना। हिमालय में समाधि की अवस्था में भगवान शिव ने इसी 'अनहद नाद' को सुना। आलंकारिक भाषा में, भगवान कृष्ण की बाँसुरी भी इसी ध्वनि (नाद) की द्योतक है। यह 'शब्द-धुन' ही संत-सत्गुरुओं को होने वाले सभी अनुभवों का स्रोत है और इसका अनुभव उन्हें अपने अंतर में प्राप्त होता है। इसीलिये इसे केवल वे ही इसे जानते हैं और दूसरों को भी इसी सत्य की शिक्षा प्रदान करते है।

'शब्द' के रहस्य को जो जानता है, वही तमाम ब्रह्मांड के रहस्यों को जानता है। जिस किसी ने भी इस 'शब्द' की धाराओं का अनुभव पाया, वही दुनिया के तमाम फ़र्कों और भेदभावों से ऊपर उठ गया और उसी परम सत्य के आदर्श को पा गया, जिसमें पहुँचकर सभी प्रभु के प्यारे एक हो जाते हैं। अंतरिक्ष इस जिस्म के अंदर है और बाहर भी है। दूसरे लफ़्ज़ों में अंतरिक्ष जिस्म के अंदर है और जिस्म अंतरिक्ष के अंदर है।

जब ऐसी बात है, तो प्रभु की 'शब्द-धुन' हमेशा ही इंसान के बाहर, अंदर और उसके चारों ओर गूँजती रहती है। इंसान आमतौर से इस आवाज़ को नहीं सुन पाता है, क्योंकि उसका ध्यान पूरी तरह से जड़ पदार्थों में लगा रहता है। इंसान अपने भौतिक शरीर के माध्यम से बाहरी संसार में इतना ज़्यादा लम्पट है कि अंतरिक्ष, जो कि अद्भुत 'ज्योति'

और 'शब्द-धुन' से परिपूर्ण है, उसे अंधकारमय लगता है... धरती की आवाज़ों की सीमित मात्र भी इतनी ठोस व सघन होती है कि इसके शोर-शराबे से 'शब्द की ध्वनि' सुनाई नहीं पड़ती, यद्यपि आंतरिक आवाज़ के मुक़ाबले में बाहरी आवाज़ें ऐसी लगती हैं, जैसे कि सीटी की आवाज़ से लेकर ढोल। जब साधक को 'शब्द-धुन' सुनाई देने लगती है, तो बाक़ी की सभी आवाज़ें बहुत हल्की पड़ जाती हैं।

प्रभु की आवाज़ को वेदों में 'अनहद' कहा गया है, जिसका अर्थ है, सीमा रहित। सूफ़ी इसे 'सरमद' का नाम देते हैं, जो कि नशे के विचार को सुझाता है। यहाँ 'नशे' शब्द का प्रयोग जिस्म-जिस्मानियत व सांसारिक बंधनों से ऊपर उठने के लिए किया गया है। जो 'सौते-सरमदी' को सुन सकते हैं और उसका ध्यान कर सकते हैं, वे तमाम चिंताओं से, परेशानियों से, डरों से और बीमारियों से छूट जाते हैं और उनकी आत्मा इंद्रियों व शारीरिक बंधनों से मुक्त हो जाती है। इस आवाज़ को सुनने वाले की आत्मा सर्वव्यापी चेतनता में समा जाती है तथा उसकी रूह ऐसी ऊर्जा हो जाती है, जो तमाम ब्रह्मांड को चलायमान रखती है...

शरीर की विभिन्न नाड़ियों के माध्यम से प्रकट होने के कारण यह आवाज़ दस तरह की हो जाती है। इसकी ध्वनि-बादल के गरजने, समुद्र की लहरों की आवाज़, घंटियों की टनाटन, बहते पानी की आवाज़, मक्खियों के भिनभिनाने की आवाज़, चिड़ियों के चहचहाने की आवाज़, वीणा के स्वर, सीटी की आवाज़, शंख की ध्वनि आदि के जैसी होती है, जो अंत में 'हू' की आवाज़ में बदल जाती है, जो सबसे पवित्र आवाज़ है। यह 'हू' की आवाज़ बाक़ी की सभी आवाज़ों की आदि और अंत है, चाहे वे आवाज़ें किसी इंसान की हों या फिर किसी पक्षी, पशु या वस्तु की।

– दि मिस्टिसिज़्म ऑफ़ दि साउंड

मुस्लिम धर्मग्रंथों में इसे विभिन्न नामों से पुकारा गया है, जैसे कि 'कलामे–इलाही' (परमात्मा की आवाज़), 'निदाए–आसमानी' (स्वर्ग की आवाज़), 'इस्मे–आज़म' (महान नाम), 'सौते–सरमदी' (मधुर सुरीली आवाज़), 'कलामे–मजीद' (महा आदेश) और 'कलामे–हक़' (सत् की ध्वनि), जो आतंरिक तौर पर सुनी जा सकती है और जिसकी 'सुल्तान–उल–अज़कार' (प्रार्थनाओं का बादशाह) के रूप में शिक्षा दी जाती थी। मुस्लिम फ़क़ीरों की शिक्षाओं में हमें इस 'अनहद ध्वनि' के अनगिनत संदर्भ मिलते हैं :

चर्ख़ रा दर ज़ेरे–पा आर ऐ शुजाअ,
बिशनौ अज़ फ़ौके–फ़लक बांगे–समाअ।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.190)

(ऐ बहादुर रूह! अपने मन के स्तर से ऊपर उठ और ऊपर से आने वाले उस आसमानी संगीत को सुन।)

हमा आलम पुर अस्त अज़ आवाज़, लेक दरहाए–गोशे–ख़ुद कुन बाज़।
बिशनवी यक कलामे–ला–मक़्तू, अज़ हदूसो–फ़ना बुवद मरफ़ूअ।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

(सारा संसार 'शब्द–ध्वनि' से गुंजायमान हो रहा है। उसे सुनने के लिये तुम्हें अपने अंदर के कानों पर लगी मुहरों को तोड़ना होगा, तभी तुम्हें कभी ख़त्म न होने वाला संगीत सुनाई पड़ेगा और वह तुम्हारी रूह को मौत के फंदे से निकालकर परे की दुनिया में ले जाकर आज़ाद कर देगा।)

तुरा ज़ किंगरा–ए–अर्श मीज़नंद सफ़ीर,
न–दांमत कि दरीं दामगह चिह् उफ़्तादस्त।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.54)

(आसमानों से लगातार एक आवाज़ आ रही है। मुझे बड़ी हैरानी है कि फिर भी तुम बेमा'नी कामों में उलझे रहते हो।)

पंबा–ए वसवास बेरूँ कुन ज़ गोश,
ता बगोशत आयद अज गरदूं ख़रोश।
पस महल्ले–वही गरदद गोशे–जां,
वही चिह् बुवद गुफ़्तन अज़ हिस्से–निहां।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ॰170)

(अपने मन में से सभी वहमों, भ्रमों को निकाल फैंको, आसमानी संगीत के मधुर स्वरों को सुनो और अपने अंदर प्रभु के संदेश को पाओ, क्योंकि ऐसा अंतर्मुख होकर ख़ुदा के साथ जुड़ने से ही प्राप्त होता है।)

गुफ़्त पैग़म्बर कि आवाज़े–ख़ुदा, मी रसद दर गोशे–मन हमचू सदा।
मुहर बर गोशे–शुमा बिनहादे–हक, ता ब आवाज़े–ख़ुदा नारद सबक़।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.273)

(हज़रत साहिब ने यह ऐलान किया कि मुझे 'ख़ुदा की आवाज़' इस क़दर साफ़ सुनाई पड़ी, जैसे कोई दूसरी आवाज़ होती है। लेकिन अफ़सोस! ख़ुदा ने तुम्हारे कानों पर मोहर लगा दी है और इसी वजह से तुम्हें रूहानी आवाज़ सुनाई नहीं पड़ती।)

हज़रत मुहम्मद साहब के बारे में कहा जाता है कि चालीस वर्ष की उम्र में उन्हें ख़ुदाई संदेश मिलने शुरू हो गए थे, जिसके लिए उन्होंने पहले 15 साल 'आवाज़े–मुस्तक़ीम' या 'अनहद–शब्द' से जुड़ने का अभ्यास किया और 7 सालों तक प्रभु के ज्योति रूपी सत्य की झलक प्राप्त की। एक दफ़ा वे हीरा की गुफ़ा में दो वर्ष तक ध्यान में तल्लीन रहे। आगे यह कहा जाता है कि हीरा की गुफ़ा में उन्होंने छः सालों तक 'सुल्तानुल–अज़कार' ('सुरत–शब्द योग') का अभ्यास किया और हज़रत अब्दुल क़ादिर जिलानी ने यही अभ्यास उसी पवित्र गुफ़ा में 12 साल तक किया।

तमाम सिक्ख गुरुओं तथा दूसरे संतों ने बारंबार इसी चीज़ को बड़े साफ़ लफ़्ज़ों में लोगों को सिखाया। गुरु नानक जी ने इस प्रकार फ़रमाया है :

बहरे करन अकलि भई होछी सबद सहजु नही बूझिआ।।
जनमु पदारथु मनमुखि हारिआ बिनु गुर अंधु न सूझिआ।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ म॰1, पृ॰1126)

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।
एते चानण होदिआँ गुर बिनु घोर अंधार।।

– आदि ग्रंथ (आसा की वार म॰1, पृ॰463)

सबदु न जाणहि से अंने बोले से कितु आए संसारा।।
हरि रसु न पाइआ बिरथा जनमु गवाइआ जंमहि वारो वारा।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म॰3, पृ॰601)

गुर का सबदु समालि तू मूडे गति मति सबदे पाए।

— आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार म°4, पृ°550)

सतिगुर बाझहु संगति न होई।।
बिनु सबदे पारु न पाए कोई।।

— आदि ग्रंथ (मारू म°3, पृ°1068)

उपरोक्त प्रमाणों से यह भली भाँति स्पष्ट है कि सभी संत–महात्मा– चाहे वे हिंदू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों या दूसरे हों– वे सभी के सभी 'शब्द' के अभ्यास से परिचित थे, बेशक़ उन्होंने उसका संपूर्ण वैज्ञानिकी तौर से वर्णन नहीं किया। उनमें से अधिकतर 'अनहद–शब्द' का ही बयान करते हैं, जो अंड (सूक्ष्म मंडल) और ब्रह्मंड (कारण मंडल) तक पहुँचता है। परन्तु पूर्ण संत– चाहे वे एक धर्म से ता'ल्लुक रखते हों या किसी दूसरे से– इससे भी आगे पहुँचे हैं, और उन्होंने 'सार–शब्द' और 'सत्–शब्द' की भी चर्चा की है और उन मंडलों की बात की है, जो कि ब्रह्मांड से परे हैं यानी पारब्रह्म, सचखंड, अलख, अगम व अनामी देश।

'शब्द' में आवाज़ है :

इस संबंध में क़ुदरती सवाल यह उठते हैं कि 'शब्द–ध्वनि' क्या है और यह कैसे उत्पन्न होती है? कुछ लोगों का कहना है कि दो चीज़ों के टकराने से आवाज़ पैदा होती है। दूसरे कहते हैं कि जहाँ कंपन या स्पंदन (vibration) हो, वहाँ आवाज़ होती है। यह तो सच ही है कि टकराव से और स्पंदन से आवाज़ होती है। लेकिन संत जिस आवाज़ की बात करते हैं, वह उस आवाज़ से अलग है, जिसकी आमतौर पर बात की जाती है। यह बहुत सूक्ष्म है, चेतन है और इसी से प्राणियों में बढ़ने, फलित होने और विकसित होने का गुण आता है। यह जीवन का जीवन है, जो दृश्य व अदृश्य– सभी पदार्थों में रमा हुआ है। यह प्रभु सत्ता का सक्रिय और जीवंत माध्यम है और संक्षेप में इसे 'कार्यरत प्रभु सत्ता' कहा जा सकता है। यह 'शब्द–सिद्धांत' ही पुरातन ऋषियों का असली ज्ञान है, ज़रतुश्तु की अनंत जीवन की विचारधारा है, यूनानी लोगों का 'लोगॉस', चीनी लोगों का 'ताओ', गौतम का 'बोध' या 'निर्वाण' है और दार्शनिकों का 'शब्द–सार' है।

गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ अकथु कहावै सोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰59)

यह 'शब्द–धुनि' सब पदार्थों में परिपूर्ण है, यद्यपि इसके इज़हार की मात्रा एक या दूसरी वस्तु में भिन्न हो सकती है। यह पत्थरों और लकड़ी में भी है, जो कि देखने में निर्जीव लगते हैं। सच्चाई यह है कि प्रकृति में तमाम चीज़ें परमाणुओं से बनी हैं और परमाणुओं में ऊर्जा भरपूर है, जैसा कि 'परमाणु–ऊर्जा' शब्द से स्पष्ट है। इस ऊर्जा के कारण ही ये परमाणु हमेशा क्रियाशील, गतिशील रहते हैं और जैसे वे स्पंदित (vibrate) होते रहते हैं, एक कुदरती लयात्मक ध्वनि उनसे निकलती है। विज्ञान की आधुनिकतम खोजें इस सत्य का साक्ष्य करती हैं। 'परिवर्तन' जीवन का नियम है। यह स्पंदन और गति से होता है और ये सभी अंत में 'शब्द–सिद्धांत' पर निर्भर हैं, जो पर्यावरण में, अंदर और बाहर, कार्यरत है।

बयक लम्हा बयक साअत बयक दम,
दिगर गूं मे शवद अहवाले–आलम।

— मसनवी (दफ़्तर 1, पृ.94)

(प्रत्येक क्षण, प्रत्येक निमिष और प्रत्येक घंटा, संसार बदलता रहता है।)

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि महान हिमालय पहाड़ भी युगों–युगों से बढ़ रहे हैं, इस बढ़ोतरी का चाहे पता ना लगे; परन्तु यह है अवश्य, चाहे यह पूरी शताब्दी में एक इंच से भी कम हो। इस तरह से सभी प्राकृतिक वस्तुएँ लयात्मक रूप से हरक़त में हैं और इस प्रकार सबके अंदर 'शब्द–धुनि' है, बेशक़ चीज़ों की हरक़त हमें दिखे या नहीं दिखे। यह 'शब्द–सिद्धांत' ही सभी वस्तुओं में समाए हुए एक 'जीवन का सार' या 'जौहर' है।

पुर ओ ख़ाली पुर अंद अज़ नग़मा–ए–दोस्त,
बिबीं दफ़ रा कि चूँ बर मी दरद पोस्त।

(चीज़ें चाहे ख़ाली हों या भरी, सभी के अंदर संगीत भरा हुआ है, देखो! ढोल में से आवाज़ कैसे निकलती है।)

यह 'ध्वनि–सिद्धांत' सर्वव्यापी है और जो कुछ अस्तित्व में है, उस सबका आधार है। ज़िंदगी देने वाली यह चेतनता की धारा इतनी सूक्ष्म है कि यह तब तक सुनाई नहीं पड़ती, जब तक कि अंतर्जनित श्रवण शक्ति न प्राप्त हो। किसी सूफ़ी ने बड़े ही सुंदर अंदाज़ में इसे ऐसे बयान किया है :

ख़ुश्क तार ओ ख़ुश्क चोब व ख़ुश्क पोस्त,
अज़ कुज़ा मी आयद ईं आवाज़े–दोस्त।

(तार, लकड़ी और चमड़ा सब के सब सूखे हैं, तो फिर उनमें से दिव्य संगीत की धुनकारें कैसे निकलती हैं?)

'शब्द' या 'नाम' वास्तव में सृष्टि का रचियता है। जो कुछ भी इज़हार में आया है, सभी कुछ उसी के कारण से है।

गर ब इज़हार रू न आवुर्दे,
नामे–आवाज़ ईं जहाँ न बुदे।

(अगर उस अनामी ने अपने आप को 'नाम' के रूप में प्रकट नहीं किया होता, तो यह संसार इज़हार में नहीं आता।)

प्रियतम परमात्मा की पुकार मन के परे हमें अनादि काल से ही वापिस बुलाती रही है, परन्तु अफ़सोस है कि हम उसकी आवाज़ को कभी सुनते ही नहीं।

यारे–मा हरदम अस्त बा तू कलीम,
हैफ़ तू नशनवी कलामे–क़दीम।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

(मेरा दोस्त हमेशा ही तुझ से बातें करता रहता है। कितना अफ़सोस है, तुम उस 'पुरातन आवाज़' को सुनते ही नहीं।)

उस परम मित्र (प्रभु) की आवाज़ सदा ही सर्वत्र धुनकारें मारती रहती है। एक मुस्लिम सूफ़ी शायर इसके बारे में कहते हैं :

ज़ीं क़िस्सा हफ़्त गुम्बदे–अफ़लाक पुर सदास्त,
कोतह् नज़र न बीनद कि सुख़न मुख़्तसर गरिफ़्त।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.87)

(सातों आसमान 'शब्द–धुनि' से गुंजायमान हैं। अज्ञानी उसे नहीं सुनते और न ही उसकी मधुर स्वर–लहरियों को पकड़ पाते हैं।)

तुम उसे सुनकर भी समझ नहीं पाओगे और देखकर भी उसे जान नहीं पाओगे।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 13:14)

यह 'शब्द–ध्वनि' अपने आप में स्थित है, स्वावलंबी है। स्थूल मंडल में और मन–माया के मंडलों (पिंड और अंड) में यह आवाज़ माया

(पदार्थ) से मिलकर उससे घिरी रहती है। सत्गुरु इसे 'सुखमना' (सुषुम्णा) या 'शाहरग' में मस्तक के केन्द्र पर प्रकट करा देते हैं।

> सुषुम्ना के अंदर के संगीत को सुनो और इस अनंत स्वरलहरी में विलीन हो जाओ।
>
> जब कभी तुम दाहिनी या बाईं ओर मुडने लगो, तब तुम्हारे पीछे से यह शब्द तुम्हारे कानों में पड़ेगा, 'मार्ग यही है, इसी पर चलो।'
>
> — पवित्र बाइबिल (यशायाह 30:21)

आत्म–बोध तथा आत्म–ज्ञान के लिये 'शब्द–धारा' ('शुग़्ले–नग़्माए–यज़दानी') का अभ्यास अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इस दिव्य संगीत के सुनने से आत्मा शरीर के स्थूल और मानसिक बंधनों से आज़ाद हो उच्चतर आत्मिक मंडलों की ओर पथ–प्रदर्शित होती है, जहाँ से इस 'शब्द–धुनि' का उद्‌गम होता है, जिसकी प्रतिध्वनि नीचे स्थूल शरीर में सुनाई देती है। यह निरंतर चलने वाला 'अनहद संगीत' है, जिसके बारे में मौलाना रूमी फ़रमाते हैं :

बांगो–सीते जू कि आं ख़ामिल नशुद,
ताबे–खुशीदे कि आँ आफ़िल नशुद।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.273)

(उस संगीत को पकड़ो, जो सदा बना रहता है और उस सूरज की तलाश करो, जो कभी अस्त नहीं होता।)

परन्तु दुनिया के लोग इसकी ओर बेख़बर हैं। कोई बिरला इंसान ही इसके किसी सत्गुरु के द्वारा व्यक्त करने पर इसका अभ्यास कर पाता है।

बनिगर दर नफ़्से–ख़ुद सद गुफ़्तगू,
हम नशीने–ऊं नबुर्दा हेच बू।।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 4, पृ.164)

(अपने जिस्म के मकान में दाख़िल हो जाओ और रूहानी संगीत को सुनो। इसे तुम्हारे इर्द–गिर्द के लोग नहीं सुन सकेंगे।)

रोज़ाना की व्यस्त कामकाजी ज़िंदगी के शोरगुल में हम उस सुदूर से प्रवाहित होते संगीत के कोमल तथा सौम्य गुंजार को नहीं सुन सकते।

जिस किसी ने भी, किसी भी देश–काल में 'शब्द–योग' का अभ्यास किया है, उसने इन मधुर स्वर–लहरियों का ज़िक्र किया है, परन्तु उतना ही कि जहाँ तक उसकी पहुँच हो सकी और उसका मानसिक तंत्र प्रभावित हो सका। अब भी वे लोग, चाहे जवान हों या बूढ़े, जिन्हें प्रभु द्वारा भेजे गए किसी समर्थ सत्गुरु द्वारा मार्ग पर लगाया जाता है, इस अनंत अनुभव का सत्यापन करते हैं।

उपनिषदों में हमें इन संगीत–लहरियों का वर्णन मिलता है। पहले यह विशाल समुद्र की लहरों की आवाज़ जैसी, दूर से आती बादल के मंद गर्जन जैसी या लगातार गिरते हुए जलप्रपात जैसी होती है, और बाद में यह शंख की आवाज़ में विलीन हो जाती है, और उसके बाद बिगुल के बजने की आवाज़ और फिर तेज़ नगाड़े की आवाज़ तीखी वायलिन और बाँसुरी की आवाज़ में तब्दील हो जाती है।

महात्मा चरणदास ने अपनी पुस्तक भक्ति सागर में दस प्रकार की आवाज़ों का वर्णन किया है। ये हैं : पक्षियों के चहचहाने की मीठी आवाज़, झींगुर की आवाज़, घंटियों की झनझनाहट, घड़ियाल की ध्वनि, शंख, मंजीरे की आवाज़, बादलों की गर्जन, शेर की दहाड़, वायलिन तथा बाँसुरी की स्वर लहरियाँ।

हठयोग प्रदीपिका में भी दस प्रकार के नाद का वर्णन है, जैसे कि भँवरों की गुंजन, पायलों की रुनझुन, शंख, घंटा व मंजीरे, बाँसुरी, नगाड़े की ध्वनि तथा अन्य वाद्ययंत्रों की आवाज़ें तथा सिंह की गर्जन आदि।

सार–बचन (हिदायतनामा) में स्वामी शिवदयालसिंह जी ने इस दिव्य वाद्यवृंद का एक सुंदर वर्णन किया है, जिसमें सहस्र–दल कवँल (एक हज़ार) ज्योतियों का मंडल) में प्रवेश करने पर उपरोक्त वर्णन से मिलते–जुलते दस संगीतस्वर हैं।

थियोसोफ़िकल सोसाइटी की संस्थापक और विवादास्पद पुस्तक, 'आइसिस अनवेल्ड' ('Isis Unveiled') की रूसी लेखिका, मैडम ब्लावात्स्की, जो 1856 में तिब्बत में थियोसोफ़ी (ब्रह्मविद्या) में दीक्षित हुईं, अपनी पुस्तक 'मौन की ध्वनि' ('The Voice of the Silence') में लिखती हैं :

> *पहली आवाज़ बुलबुल के मीठे स्वरसंगीत की है, जो वह बिछुड़ते समय अपने प्रियतम से गाती है। दूसरी आवाज़*

चाँदी के झाँझ के जैसी सुनाई देती है, जो टिमटिमाते तारों को जगा देती है। अगली आवाज़ अपने कवच में क़ैद समुद्र देवता की विरह भरी रागिनी है, और इसके बाद वीणा की स्वरलहरी उभरती है। पाँचवीं आवाज़ बाँस की बाँसुरी के तीव्र स्वरों जैसी कानों में पड़ती है। ये आगे तुरही के स्वरों में बदल जाती है। आख़िरी आवाज़ बादलों के मंद गर्जन के समान है।

ख़्वाजा निज़ामुद्दीन चिश्ती के शिष्य, अमीर ख़ुसरो, जो एक महान विद्वान व रूहानी शायर हुए हैं, इन आवाज़ों को इस तरह से बयान करते हैं :

एकी भँवर गुँजार सी दूजे घुँघरू होइ।
तीजे शबद संख का चउथे घंटा होइ।।
पांचवे टाल जो बाजे छटे सो मुरली नाथ।।
सातवें भीर जो गाजे अठवें शब्द मदरंग का नवें नफ़ीरी टाल।।
दसवें गरजे सिंघ ख़ास ख़ुसरो यह ताल।।
दस प्रकार अनहद बजे जित जोगी हो लीन।।
इंदरी थकी मनुआ थे ख़ुसरो ने कहि दीन।।
अनहद बाजे बाजन लागे चोर नगरीआ तज तज भागे।।
गुरू निज़ाम की भी दुहाई ख़ुसरो ने अंतर लिव लाई।।

– तज़करा–ए–ग़ौसिया (पृ॰332)

(पहली आवाज़ भँवरे की और दूसरी घुंघरू जैसी है। तीसरी शंख की आवाज़ और चौथी घंटे की आवाज़ है। पाँचवीं नगाड़े की आवाज़ है, और छठी बाँसुरी की। सातवीं भैरवी की, आठवीं मृदंग (ढोल) की और नवीं शहनाई की आवाज़ है। दसवीं आवाज़ शेर के गर्जन के सामान है। ऐ ख़ुसरो! ऐसा यह दिव्य वाद्यमंडल है। इन दसों आवाज़ों में योगी तल्लीन हो जाता है। इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं, मन शांत हो जाता है। अंतर में जब 'अनहद–संगीत' बज रहा होता है, तो उसके साथ लगने से सभी कामनाएँ और भयंकर पाप–कर्म समाप्त हो जाते हैं। ख़ुसरो गुरु निज़ामुद्दीन औलिया की दुहाई देकर कहते हैं कि वे अब अंतर में पूरी तरह से लीन हो गये हैं।)

जैसे ही तीर्थयात्री आत्मा अंतर की यात्रा शुरू करती है, ये सभी आवाज़ें उसे घेर लेती हैं, परन्तु इन में से शंख या घंटे की आवाज़ को पकड़ना चाहिये, क्योंकि विशेषकर ये ही पिता परमेश्वर के घर के भवनों अर्थात् उच्चतर मंडलों से जुड़ी होती है।

कस न–दानिस्त कि मंज़िल–गहे मअशूक़ कुजास्त,
ईंक़दर हस्त कि बांगे–जरसे मी आयद।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.200)

(कोई नहीं जानता कि उस प्रियतम का निवास कहाँ है, परन्तु इतना ज़रूर है कि वहाँ से घंटे की आवाज़ आ रही है।)

'शब्द' में रब्बी संगीत भरा हुआ है :

साचै सबदि सहज धुनि उपजै मनि साचै लिव लाई।।
अगम अगोचरु नामु निरंजनु गुरमुखि मंनि वसाई।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰ 3, पृ॰ 1234)

हम 'शब्द' को सुन क्यों नहीं पाते? :

हालाँकि हम में से हर एक के अंदर 'शब्द' निरंतर धुनकारें मार रहा है, फिर भी हम उसे नहीं सुन पाते। इसका कारण ढूँढना मुश्किल नहीं। जब तक मन लगातार मानसिक दबावों और तूफ़ानों से घिरा रहता है, अनगिनत प्रतिकूल इच्छाओं और कामनाओं से घिरा रहता है, अहंकार (मैं–मेरी) की ख़ुराक़ पर मोटा होता रहता है और सांसारिक जीवन की अनंत लहरों के थपेड़े खाता रहता है, तब तक यह उस सूक्ष्म 'शब्द' की लयात्मक तरंगों को पकड़ नहीं सकता और न ही उसके प्रति कोई लग्न पैदा कर पाता है।

जिचरु इहु मनु लहरी विचि है हउमै बहुतु अहंकारु।।
सबदै सादु न आवई नामि न लगै पिआरु।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1247)

मौलाना रूमी इसी तरह फ़रमाते हैं :

नशनवद आं नग़महा रा गोशे–हिस्स,
कज़ सुख़नहा गोशे–हिस्स वाशद नजिस्स।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.211)

(तुम्हारे कान 'शब्द' के संगीत को नहीं सुन सकते। तुम पथभ्रष्ट हो और अपनी श्रवण शक्ति को ही खो बैठे हो।)

सेंट मैथ्यू के सुसमाचारों में ईसा मसीह कहते हैं :

इसी कारण तो लोगों के दिल पत्थर हो गये हैं और उनके कान सुनने में ढ़ीले और उनकी आँखें बंद हो गई हैं,

ताकि कहीं ऐसा न हो कि किसी वक़्त वे अपनी आँखों से देख लें और अपने कानों से सुन लें और अपने दिलों से समझ लें और फिर अपने आप को बदल लें और मैं उनके ज़ख़्मी दिलों पर मरहम लगाने का काम कर सकूँ।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 13:15)

'शब्द' परमात्मा की आवाज़ है और उसका मूल इज़हार है। यह पर्यावरण के अंदर व बाहर, हर जगह रमा हुआ है।

गुर का सबदु दारू हरि नाउ।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰1, पृ॰1189)

बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुणाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰35)

'बाणी' सब जगह मौजूद है। इसे 'शब्द' या 'नाम' कह कर जाना जाता है, और इसमें बड़ी भारी मिठास है।

जुगि जुगि बाणी सबदि पछाणी नाउ मीठा मनहि पिआरा।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰3, पृ॰602)

कितने अफ़सोस की बात है! जीव मन और माया के जाल में बुरी तरह फँसा कर अपने आप की दिव्यता खो चुका है और इसलिए प्रभु प्रियतम की सूक्ष्म व मधुर आवाज़ को नहीं सुन सकता।

हैफ़ दर बंदे-जिस्मे-दरमानी,
नशनवी सौते-पाके-रहमानी।

— दीवाने-नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

(अफ़सोस! तुम जिस्म और जिस्मानियत की चार-दीवारी में कै़द हो और उस कृपालु प्रभु की मधुर आवाज़ को नहीं सुनते।)

आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिए।।

— तुलसी साहिब

यह आकर्षक ध्वनि स्थूल कानों से सुनाई नहीं पड़ सकती। इस पारलौकिक आवाज़ को सुनने का भी एक तरीक़ा है— इसे हम आंतरिक कानों से ही सुन सकते हैं और किसी संत-सत्गुरु की कृपा दीक्षा द्वारा

यह तरीक़ा सीखा, विकसित और क्रियात्मक किया जा सकता है, क्योंकि इसमें किसी भी हद तक का सांसारिक ज्ञान, चातुर्य और प्रवीणता किसी काम के नहीं। यद्यपि विज्ञान अभी तक इस रहस्य को जानने में क़ामयाब नहीं हो सका है, फिर भी संतों के मार्गदर्शन में, शरीर–रूपी प्रयोगशाला में प्रयोग करके इस रहस्य को सुलझाया जा सकता है और इसका अनुभव किया जा सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने यह सिद्ध किया है कि परमाणुओं के अंदर भी लयबद्ध हरक़त है और दिनों–दिन वैज्ञानिक खोजें सत्य के क़रीब आती जा रही हैं।

'शब्द' को हम कैसे सुन सकते हैं? :

अगला स्वाभाविक सवाल यह है कि 'शब्द' से ता'ल्लुक कैसे किया जा सकता है और उससे कैसे जुड़ा जा सकता है? संत–जन हमें बतलाते हैं कि हम उस 'शब्द–सिद्धांत' को सुन सकते हैं, यदि हम अंतर्मुख हो जाएँ और अपने इर्द–गिर्द दुनियावी आवाज़ों को सुनना बंद कर दें। दूसरे शब्दों में, हमें अंतर्मुख होकर अपने अंतर में सिमटना सीखना होगा और अपनी आत्मा को ज़िंदगी की जकड़नों से मुक्त करा कर एक पवित्र आत्मा बनना होगा, तभी हम आत्म–ज्ञान के लायक़ बन पाएँगे, जो कि 'शब्द–धुन' को सुनने से प्राप्त होता है। 'शब्द' से जुड़ने तथा उसको सुनने का अभ्यास धीरे–धीरे आत्मा को सभी सांसारिक बंधनों से छुड़ा देता है और उसके सामने प्रेम, ज़िंदगी और ज्योति, जो समस्त सृष्टि का आधार है, की उपासना प्रकट कर देता है। संक्षेप में, हमें अपनी आत्मिक ऊर्जा को, जो कर्मेंद्रियों के, और विशेषकर आँखों, कानों और जिह्वा के द्वारा, बाहर की ओर बहती रहती है, रोककर शरीर के स्थिर केन्द्र या आत्मा के ठिकाने पर इकट्ठा करना है, ताकि मन निस्सहाय हो जाए, जिससे हम आत्मा के संगीत को पूर्णतयाः सुन सकें।

तीनों बंद लगाय के, अनहद सुने टकोर।
सहजो सुन्न समाध में, नहीं साँझ नहिं भोर।।

— सहजोबाई की बानी (साध–लक्षण, चौपाई 35, पृ॰18)

कबीर साहिब कहते हैं :

आँख कान मुख बंद कराओ।
अनहद झींगा शबद सुनाओ।।

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1 (शब्द 22, पृ.65)

शाह नियाज़ हमें बतलाते हैं :

हमा आलम पुर अस्त अज़ आवाज़, लेक दरहाए-गोश ख़ुद कुन बाज़।
बाज़ करदन हमीं बस अस्त तुरा, बंद साज़ी रहे-शुनीदन रा।
बिशनवी यक कलामे-ना-मक्तूअ, अज़ हदूसो-फ़ना बुवद मरफ़ूअ।

— दीवाने-नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

('शब्द' सारे संसार में पूरी तरह से रम रहा है। आंतरिक कानों से तुम उस अलौकिक 'शब्द' को अवश्य सुन सकते हो। तुम अपने जिस्म के बाहरी कानों को बंद करो और तब तुम अवश्य ही उस 'अनहद-शब्द' को सुन सकोगे। और यह आवाज़ तुम्हें प्रलय और नश्वरता के साम्राज्य से ऊपर ले जायेगी।)

स्थूल इंद्रियों के अलावा हम सूक्ष्म इंद्रियाँ भी रखते हैं, जो स्थूल इंद्रियों के मुक़ाबले काफ़ी अधिक शक्तिशाली हैं। फ़िलहाल, ये सूक्ष्म इंद्रियाँ बग़ैर उपयोग के गुप्त पड़ी हुई हैं। परन्तु, नियमित अभ्यास से उन्हें जगाया जा सकता है और सूक्ष्म जगत में उन्हें प्रयुक्त किया जा सकता है, जहाँ हम परा-मानसिक रूप-रंग को वैसे ही देख और अनुभव कर सकते हैं, जैसे हम स्थूल शारीरिक मंडल में करते हैं, बल्कि उससे भी अधिक सफ़ाई और समझ के साथ।

पंज हिस्से-हस्त जुज़ ईं पंज हिस्स,
आं चू ज़र्र-सुर्ख़ ओ ईं हिस्सहा चू मिस।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.19)

(पाँच स्थूल कर्मेंद्रियों के साथ ही हमें पाँच सूक्ष्म ज्ञानेंद्रियों की दात मिली हुई है। यदि बाहरी ज्ञान इंद्रियाँ तांबे की मानी जायें, तो ये आंतरिक सूक्ष्म इंद्रियाँ सोने की हैं।)

अतः 'शब्द' आंतरिक कानों से सुना जा सकता है। आत्मा और 'शब्द'- दोनों की ज़ात एक ही है और आत्मा, बिना भौतिक इंद्रियों की मदद के, सूक्ष्म 'शब्द' को सुन सकती है।

अम्र–ए–रब्बी अस्त रूह ओ सिर्र ख़ुदास्त,
ज़िक्र बेकाम ओ बेज़बां ऊ रास्त।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

(आत्मा और 'शब्द'– दोनों एक ही तत्त्व के बने हैं और इसलिये आत्मा स्थूल इंद्रियों [जीभ, होंठ व तालु आदि] के मदद के बग़ैर उसके गुणानुवाद गा सकती है।)

पवित्र कुरान में भी कहा गया है कि रूह प्रभु का 'हुक्म' है। यह उसी का आदेश है, जो हर जगह व्याप्त है और जो आसमान और धरती, जो कुछ भी अस्तित्व में है, उस सभी को धारे (सँभाले) हुए है।

'शब्द' कहाँ स्थित है और इसे हम कैसे पा सकते हैं?:

इस जिस्म में दस दरवाज़े हैं, जिनमें से नौ तो दिखाई पड़ते हैं, परन्तु दसवाँ, 'दसम द्वार' गुप्त है।

नउ दरवाजे काइआ कोटु है दसवै गुपतु रखीजै।।
बजर कपाट न खुलनी गुर सबदि खुलीजै।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰ की वार म॰3, पृ॰954)

तुम तंग दरवाज़े से प्रवेश करो, क्योंकि बड़ा है वह दरवाज़ा और चौड़ा है वह रास्ता, जो विनाश की ओर जाता है और बहुत से ऐसे लोग हैं, जो उससे प्रवेश करते हैं। क्योंकि तंग है वह दरवाज़ा और संकीर्ण है वो रास्ता, जो ज़िंदगी की तरफ़ जाता है और बहुत कम लोग हैं, जो उसे पाते हैं।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:13-14)

तंग रास्ते से प्रवेश करने की कोशिश करो, क्योंकि मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि कई लोग इससे प्रवेश करना चाहेंगे, परन्तु नहीं कर सकेंगे।

— पवित्र बाइबिल (लूका 13:24)

जब तक आत्मा, शरीर के नौ दरवाज़ों में भ्रमण करती रहती है, न चाहते हुए भी इसकी 'जौहर' या गुप्त ऊर्जा नष्ट होती रहती है। ऊर्जा के

लगातार बाहर की ओर बहाव से उसके अंतर में जो सच्चाई भरी हुई है, उससे यह पूरी तरह नावाकिफ़ रह जाती है और अपने अंदर निहित अव्यक्त ख़ुदाई क्षमता को जान नहीं पाती।

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी पूरबी भगत कबीर, पृ॰339)

गुरु अमरदास भी सलाह देते हैं कि हमें अपने नौ दरवाज़े बंद कर लेने चाहिये और मन को शांत करके, अंदर की ओर "दस्तक देनी चाहिये" और उस प्रभु–प्रियतम के महल में घुसने का यत्न करना चाहिये, जहाँ से अविरल संगीत की धारा दिन–रात बह रही है और जिससे किसी संत–सत्गुरु के बताये तरीक़े से अभ्यास करके संपर्क हो सकता है।

नउ दर ठाके धावतु रहाए।। दसवै निज घरि वासा पाए।।
ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰124)

इसे गुरु नानक बड़ी ख़ूबसूरती से बयान करते हैं :

सुखमना इड़ा पिंगुला बूझै जा आपे अलखु लखाए।।
नानक तिहु ते ऊपरि साचा सतिगुर सबदि समाए।।

— आदि ग्रंथ (रामकली सिध गोसटि, म॰1, पृ॰944)

इसका अर्थ यह है कि 'सत्गुरु के शब्द' को हम तब तक पूरी तरह से नहीं सुन सकते, जब तक हम पूरी तरह से जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर नहीं आ जाते। मन और माया के देश में, जहाँ तक पाँच तत्त्वों का साम्राज्य है, 'शब्द–धारा' स्थूल सृष्टि की भलाई के हेतु, उनमें से होकर कार्यरत रहती है, लेकिन उससे परे 'शब्द' अपने वास्तविक मूल रूप में प्रकट होता है, जो कि इनमें से किसी भी पदार्थ की मिलावट से पृथक् होता है।

'शब्द–सत्ता' स्वयंस्थित है और हर अन्य वस्तु से विमुक्त है, क्योंकि यह स्वयंभू है। एक दफ़ा जब सिद्धों ने गुरु नानक से पूछा :

सु सबद का कहा वासु कथीअले जितु तरीऐ भवजलु संसारो।।
त्रै सत अंगुल वाई कहीऐ तिसु कहु कवनु अधारो।।

— आदि ग्रंथ (रामकली सिध गोसटि, म॰1, पृ॰944)

तब गुरु नानक ने फ़रमाया :

सु सबद कउ निरंतरि वासु अलखं जह देखा तह सोई।।
पवन का वासा सुंन निवासा अकल कला धर सोई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, सिध गोसटि, पृ॰944)

'शब्द' हमारे जीवन का जीवन है, जीवनाधार है। यह हमारे अस्तित्व का भाग है और एक क्षण के लिये भी हम इसके बग़ैर ज़िंदा नहीं रह सकते। परन्तु हम इस का अनुभव तब तक नहीं पा सकते, जब तक हम शारीरिक चेतनता से ऊपर नहीं आते।

काइआ सोधि तरै भव सागरु आतम ततु वीचारी।।
गुरु सेवा ते सदा सुखु पाइआ अंतरि सबदु रविआ गुणकारी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली सिध गोसटि, म॰1, पृ॰908)

हमारा इंसानी जिस्म 'शब्द–धारा' की तरंगों को पकड़ने वाला रेडियो है, और आम रेडियो की तरह से ही, इसे भी सही प्रकार से समस्वर करना पड़ता है, ताकि यह 'शब्द' की पारलौकिक तरंगों को पकड़ सके। दीक्षा के वक़्त, सत्गुरु हमारी रूह को अंतर में सर्वव्यापी 'शब्द' के निम्नतम इज़हार के साथ जोड़ देता है और रोज़ाना अभ्यास के द्वारा इसे किसी भी स्तर तक बढ़ाया जा सकता है।

'शब्द' और 'ज्योति' :

दुनिया में थके–माँदे अकेले मुसाफ़िर को घोर अँधेरी रात में दो चीज़ें राह दिखाती हैं— यानी 'कलाम' और 'नूर' ('श्रुति' और 'ज्योति')। अध्यात्म के मार्ग पर भी ये ही दो चीज़ें सहायक सिद्ध होती हैं। दोनों में से हर एक का अपना–अपना उद्देश्य है। हमारे अंदर दिव्य–ज्योति है, जिसमें से 'शब्द–ध्वनि' निकलती है, और इन दोनों को समरूप से 'ज्योतिर्मय ध्वनि' या 'ध्वनित ज्योति' द्वारा वर्णित किया गया है।

मनु बैरागि रतउ बैरागी सबदि मनु बेधिआ मेरी माई।।
अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰1, पृ॰634)

अकथ कथा नह बूझीऐ सिमरहु हरि के चरण।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰300)

बिनु सबदै अंतरि आनेरा।।
न वसतु लहै न चूकै फेरा।।
— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰124)

बिनु सबदै जगि आन्हेरु है सबदे परगटु होइ।।
— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1250)

'शब्द' से ही तमाम ज़िंदगी और शक्ति निकलती है। सूर्य से लेकर मोमबत्ती तक की सभी ज्योतियाँ इसी विशाल बिजलीघर से निकलती हैं। वैज्ञानिकों की ऊर्जा और योगियों की प्राणशक्ति इसी जीवनधारा के ही इज़हार हैं, क्योंकि 'शब्द–धारा', हवा में व्याप्त बिजली के जैसे, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है।

उसमें जीवन था और वह जीवन ही इंसानों की जीवनज्यो. ति थी। ज्योति अंधकार में चमकती है और अंधकार उसे नहीं जानता।

वह सच्ची ज्योति थी, जो कि इस दुनिया में आने वाले हर एक इंसान को ज्योतिर्मय करती है। वह दुनिया में थी और दुनिया उससे ही बनी और दुनिया ने उसे नहीं पहचाना।
— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:4-5,9-10)

सेंट अगस्टीन अपने अंदर इस ज्योति के प्रकट होने के बारे में इस प्रकार वर्णन करते हैं :

मैं अपने अंतर में प्रवेश कर गया। आप मेरे मार्गदर्शक थे और मैं (अंतर में जाने) योग्य हुआ क्योंकि आप मेरे सहायक बने। मैंने अपने अंतर में प्रवेश पाया और वहाँ 'आत्मा की आँख' से (वह जैसी भी थी) मैंने देखा। अपनी रूह की उस आँख और मन से परे वह ज्योति देखी, जो अपरिवर्तनीय थी। वह ऐसी साधारण ज्योति नहीं थी, जो कि चमड़े की आँख से दिखाई देती है और न ही वह बाह्य ज्योतियों जैसी ज्योति थी, जिसका प्रकाश इतना तेज़ हो कि अपनी महानता में सारा आकाश ही उसने घेर रखा हो। वह ज्योति इन जैसी नहीं थी। हाँ, इन बाहरी ज्योतियों से बहुत अलग तरह

की ज्योति थी...जो सत्य को जानता है, वह इस ज्योति को जानता है और जो कोई भी इस ज्योति को जानता है, वह शाश्वतता को जानता है।

संत कबीर हमें बतलाते हैं कि 'शब्द' के बग़ैर सुरत अंधी है और उसे अपना रास्ता नहीं सूझता :

सबद बिना सुरत आंधरी, कहो कहां को जाय।
दुआर न पाए सबद का, फिरि फिरि भटका खाय।।

— कबीर साखी संगह भाग 2 (15, पृ॰99)

हज़ारों साल पहले, ज़रतुश्तु (Zoroaster) ने 'प्राण–अग्नि' ('Vital Fire') की उपासना की शिक्षा दी और आज भी उसके चिन्ह पारसी लोगों के घरों में आग जला कर रखने की प्रथा में देखे जा सकते हैं। महात्मा गौतम को जब बोध हुआ यानी वे 'बुद्ध' बने, तो उन्होंने अपने शिष्यों को भी इसी ज़िंदगी की राह की शिक्षा दी।

पूर्व व पश्चिम के सभी महात्मा, जिन्होंने अंतर्मुख होने और इच्छा अनुसार सुरत की धारा को समेट पाने का अभ्यास किया, वे 'ज्योति' और 'नाद–ध्वनि'– दोनों के अनुभवों का बयान करते हैं। ज्यों–ज्यों आत्मा आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ती है, देखने की शक्ति (निरत) सुनने की शक्ति (सुरत) से आगे रहती है, क्योंकि रोशनी की गति आवाज़ की गति से अधिक तेज़ होती है।

आत्मा, यद्यपि मन और माया से घिरी होती है, फिर भी उसके अंदर ज्ञानेंद्रियों के बग़ैर भी देख व सुन सकने की क्षमता है, और जब इन दोनों ('निरत' व 'सुरत') को विकसित किया जाता है, तब शरीर से चेतनता की धारा को समेट कर ऊपर आया जा सकता है, आज़ादी से उच्चतर रूहानी मंडलों में घूमा–फिरा जा सकता है, और सदा के लिये संसार के बंधन से मुक्त हुआ जा सकता है।

निरत सखी को अगुआ करके। सतलोक चढ़ जाऊँगी।।

— सार बचन, पद्य (35:20)

शुरू में 'ज्योति' पहले आती है और 'ध्वनि' बाद में। हम 'सुमिरन' और 'ध्यान', दोनों का अभ्यास पहले करते हैं, क्योंकि इनसे अग्रिम विकास

का मार्ग प्रशस्त होता है। यद्यपि दोनों अभ्यासों का अपना–अपना उद्देश्य है, फिर भी, दोनों का ही अभ्यास किया जाता है, जिससे कि 'शब्द' का अविर्भाव हो, क्योंकि असली महत्त्व 'शब्द' का ही है। इसलिये 'शब्द' ही वह नियंत्रक कुंजी है, जो 'सुमिरन' और 'ध्यान' से बने रूहानी दरवाज़े को खोलने के लिये ज़रूरी है। रूहानी यात्रा के दौरान ऐसी हक्का–बक्का कर देने वाली मंज़िलें भी आती हैं, जहाँ हर तरफ़ से आँखें चुँधियाने वाली ज्योति रूह को घेर लेती है और ऐसे मुक़ाम पर सिर्फ़ 'शब्द' ही मददगार होता है और रूह को बचा कर आगे ले जाता है।

तुम्हारे पीछे से यह शब्द तुम्हारे कानों में पड़ेगा, 'मार्ग यही है, इसी पर चलो।'

– पवित्र बाइबिल (यशायाह 30:14)

रास्ते में ऐसी मंज़िलें भी हैं, जहाँ घना अंधकार होता है और ऐसे मंडल भी हैं, जो गहन ख़ामोशी और रहस्य से भरे हैं, जहाँ विस्मय तथा निराशा होती है; तो वहाँ भी 'प्रभु की आवाज़' ('शब्द') ही, जो एक अचूक मार्गदर्शक और कभी निराश न करने वाला मित्र है, हमें बचाती है, यह कहते हुए :

एवरीमैन (आम इन्सान)? मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा और तुम्हारा मार्गदर्शक बनूँगा और जब तुम्हें सर्वाधिक ज़रूरत होगी, तो तुम्हारा साथ दूँगा।

– एवरीमैन (Everyman)

हर किसी को रास्ता दिखला पाने में ध्वनि की महत्ता की मान्यता है। एक अनजाने रास्ते में, रात के घोर अँधेरे में, ऐसे बीयाबान में जहाँ कोई भी आबादी नज़र नहीं आती हो, एक अकेला यात्री बड़ी बेचैनी से, उत्कंठित होकर किसी भी तरफ़ से आती आवाज़ को पकड़ने की कोशिश करता रहता है– चाहे वह आवाज़ बहुत दूर कुत्ते के भौंकने की ही क्यों न हो, ताकि उसके थके–माँदे क़दमों को सही दिशा तो मिल सके, क्योंकि भौंकने की आवाज़ रास्ते में किसी आबादी की घोषणा करती है, जिसके सहारे वह आगे बढ़ सकता है, जब तक कि वह उस तक न पहुँच जाये। इसी तरह से रास्ता भटकने वाले सही दिशा पाने के लिये, भागते हुए घोड़ों के पाँवों की टाप या

किसी जानवर के गले में बँधी घंटियों की आवाज़ को सुनने का यत्न करते रहते हैं। तो यह है आवाज़ की ताक़त, जो अचूक और पूर्णतया विश्वसनीय है और आंतरिक रूहानी यात्रा में तो इसका महत्त्व और भी अधिक हो जाता है।

'शब्द' और 'सत्य' एक हैं :

'शब्द' परिपूर्ण व निराकार सत्य (प्रभु) का इज़हार ही है। यह प्रभु की शाश्वत और निर्विकार सत्ता है, जो उस प्रभु की इच्छा के अनुसार सभी दिशाओं में कार्यरत है। सच (सत्य, प्रभु) की तरह से, यह भी उस समय मौजूद था, जब सृष्टि की रचना नहीं हुई थी, उस समय भी था जब युग बने और आगे भी सदा–सदा ही रहेगा।

गुरु नानक इस के बारे में फ़रमाते हैं :

एको सबदु सचा नीसाणु।।
पूरे गुर ते जाणै जाणु।।

— आदि ग्रंथ (बसंत राग म॰1, पृ॰1188)

गुरु अमरदास जी और गुरु अर्जनदेव जी इसी बारे में कहते हैं :

सचु बाणी सचु सबदु है जा सचि धरे पिआरु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰ 3, पृ॰33)

सुणि सजण जी मैडड़े मीता राम।।
गुरि मंत्रु सबदु सचु दीता राम।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰576)

'शब्द' जीवन का अमृत है :

'शब्द' जीवन का अमृत ('आबे–हयात') है, जो हमें अमर कर देता है और सदा की ज़िंदगी बख़्श देता है।

मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि जो कोई मेरे 'शब्द' पर चलेगा, वो अनंत काल तक मौत को नहीं देखेगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 8:51)

यदि किसी को प्यास है, तो वो मेरे पास आकर पिये।

जो कोई मुझ पर विश्वास करेगा...उसके पेट (हृदय) में से ज़िंदगी देने वाले जल की नदियाँ बह निकलेंगी।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 7:37-38)

एक बार ईसा समारिया में से गुज़र रहे थे, तो याकूब (Jacob) के कुएँ के पास आकर थोड़ी देर के लिये बैठ गये। तभी वहाँ पानी भरने के लिये एक औरत आई और ईसा ने उससे पानी पिलाने को कहा। लेकिन क्योंकि वह औरत नीच जाति की थी और ईसा यहूदी थे, इसलिये वह उनसे संबंध रखने में हिचक रही थी। इस पर ईसा ने उससे कहा, "यदि तुम्हें प्रभु की दात के बारे में पता होता और यदि तुम जान पाती कि कौन तुमसे पानी माँग रहा है, तो तुम उससे पानी माँगती और वह तुम्हें 'ज़िंदगी के पानी' की दात दे देता...।"

जो कोई उस पानी को पिएगा, जिसे मैं पिलाता हूँ, वह कभी भी प्यासा नहीं रहेगा, बल्कि जो पानी मैं उसे दूँगा, उस से हमेशा की ज़िंदगी देने वाला सोता (झरना) फूट पड़ेगा।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 4:10,14)

मेरे लोगों ने.....मुझे, ज़िंदगी के पानी के सोते को त्याग दिया है।

— पवित्र बाइबिल (यिर्मयाह 2:13)

सिक्ख धर्मग्रंथों में हमें मिलता है :

गुर का सबदु अंमृतु है जितु पीतै तिख जाइ।।
इहु मनु साचा सचि रता सचे रहिआ समाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰35)

बिना 'शब्द' के सारा ही जगत घोर अंधकार में है और ज़िंदगी व्यर्थ चली जाती है। केवल किसी सत्गुरु का शिष्य ही 'जीवन के अमृत' तक पहुँच पाता है।

बिनु सबदै सभु जगु बउराना बिरथा जनमु गवाइआ।।
अंमृतु एको सबदु है नानक गुरमुखि पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰ 4, पृ॰ 644)

'जीवन के अमृत' का कुँआ हमारे अंदर छिपा रहता है, पर हम मनमुख

हैं और इससे पी नहीं पाते। कस्तूरी मृग के समान, जिसकी नाभि में कस्तूरी होती है, हम इसे (अमृत को) बाहर ही ढूंढते रहते हैं और इसी कोशिश में अपनी ज़िंदगी गँवा देते हैं।

घर ही महि अंमृतु भरपूरु है मनमुखा सादु न पाइआ।।
जिउ कसतूरी मिरगु न जाणै भ्रमदा भरमि भुलाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰644)

ज़िंदगी की धारा अंतर में प्रवाहित हो रही है और 'शब्द' के माध्यम से उस तक पहुँचा जा सकता है और उससे पिया जा सकता है।

अंतरि खूहटा अंमृति भरिआ सबदे काढ़ि पीऐ पनिहारी।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰3, पृ॰570)

'शब्द' सभी उपासनाओं का सार है :

हमारे सभी प्रयत्न, अभ्यास और रीति–रिवाज़ 'शब्द' की प्राप्ति के लिये ही हैं। 'शब्द' की भक्ति प्रभु को मंजूर है और उसी के द्वारा वह हमें मुक्ति प्रदान करता है।

सचु करणी सबदु है सारु।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰114)

गुर का सबदु करणी है सारु।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती बिभास म॰1, पृ॰1345)

सिर्फ़ 'शब्द' का अभ्यास ही सत्य तक पहुँचाता है। अन्य किसी साधन से संसार का मोह या राग नहीं छूटता। इस विषय में गुरु नानक कहते हैं :

इसु जग महि सबदु करणी है सारु।।
बिनु सबदै होरु मोहु गुबारु।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰1, पृ॰1342)

इस वर्तमान युग– कलियुग में केवल 'शब्द' की भक्ति ही प्रभु को मान्य है :

कलि कीरति सबदु पछानु।।
एहा भगति चूकै अभिमानु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰424)

यह 'शब्द' ही है, जिसके साथ जुड़ने से जीव मिट्टी से सोना और गंदगी से एक शुद्ध रत्न में परिवर्तित हो जाता है :

कचहु कंचनु भइअउ सबदु गुर स्रवणहि सुणिओ।।
बिखु ते अंमृतु हुयउ नामु सतिगुर मुखि भणिअउ।।

— आदि ग्रंथ (संवईए महले चउथे, पृ०1399)

इस तरीक़े से मनुष्य जन्म का पूरा फल प्राप्त हो जाता है :

गुरमुखि जनमु सकारथा सचै सबदि लगंनि।।
आतम रामु प्रगासिआ सहजे सुखि रहंनि।।

— आदि ग्रंथ (सूही म०3, पृ०755)

'शब्द', 'नाम' और 'हुक्म' सब एक ही हैं। वास्तव में, ये इज़हार में आई प्रभु–शक्ति के पर्यायवाची हैं।

हुकमु मंने सो जनु परवाणु।।
गुर कै सबदि नामि नीसाणु।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म०3, पृ०1175)

'शब्द' सोमरस है, जो कि बड़ा मीठा और सुहावना है :

गुर का सबदु महा रसु मीठा।।
ऐसा अंमृतु अंतरि डीठा।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म०1, पृ०1331)

'शब्द' का भंडार कभी समाप्त नहीं होता और सदा भरपूर रहता है :

तिचरु मूलि न थुडींदो जिचरु आपि कृपालु।।
सबदु अखुटु बाबा नानका खाहि खरचि धनु मालु।।

— आदि ग्रंथ (सलोक वारां ते वधीक म०5, पृ०1426)

'शब्द' असीमित और सर्वव्यापी है। यमराज इसके नज़दीक भी नहीं आ सकता :

तूंहै साजनु तूं सुजाणु तूं आपे मेलणहारु।।
गुर सबदी सालाहीऐ अंतु न पारावारु।।
तिथै कालु न अपड़ै जिथै गुर का सबदु अपारु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म०1, पृ०55)

'शब्द' सर्वव्यापी है और सब में अंतर्निहित है :

सबदि सूर जुग चारे अउधू बाणी भगति वीचारी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰908)

'शब्द' अपनी परिपूर्णता में सर्वत्र फैला हुआ है।

ए मन मत जाणहि हरि दूरि है सदा वेखु हदूरि।।
सद सुणदा सद वेखदा सबदि रहिआ भरपूरि।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰429)

'शब्द' या 'हुक्म' प्रभु की नियंत्रक शक्ति है :

चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं।।
सभ महि सबदु वरतै प्रभ साचा करमि मिलै बैआलं।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰1, पृ॰1275)

'शब्द' मानव शरीर के पवित्र मंदिर में रहता है, और इसलिये इसे वहीं पाया जा सकता है :

काइआ नगरी सबदे खोजे नामु नवं निधि पाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰910)

इस शरीर में 'शब्द' का अनुभव अंतर्मुख होकर, आत्म–विश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा किया जा सकता है :

काइआ सोधि तरै भव सागरु आतम ततु वीचारी।।
गुर सेवा ते सदा सुखु पाइआ अंतरि सबदु रविआ गुणकारी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰908)

गुरु नानक 'शब्द' के निवास–स्थान के बारे में हमें बतलाते हैं :

सुखमना इडा पिंगुला बूझै जा आपे अलखु लखाए।।
नानक तिहु ते ऊपरि साचा सतिगुर सबदि समाए।।

— आदि ग्रंथ (रामकली सिध गोसटि, म॰1, पृ॰944)

'शब्द' से कैसे जुड़ें? :

(क) प्रभु की कृपा द्वारा :

जिस किसी पर भी वह अनुकम्पा करे, उसके अंतर में वह दया करके 'शब्द' को प्रकट कर देता है।

नदरि करे सबदु घट महि वसै विचहु भरमु गवाए।।
तनु मनु निरमलु निरमल बाणी नामुो मंनि वसाए।।

— आदि ग्रंथ (रामकली सिध गोसटि, म॰1, पृ॰944)

जिसहि बुझाए सोई बूझै जिस नो आपे लए मिलाइ।।
अनदिनु बाणी सबदे गांवै साचि रहै लिव लाइ।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰3, पृ॰1259)

जो उसकी कृपा के दायरे में आ जाते हैं, उनके लिये प्रभु की टकसाल में 'शब्द' गड़ा जाता है और वे ही 'नाम' का अभ्यास कर पाते हैं।

घ़डीऐ सबदु सची टकसाल।।
जिन कउ नदरि करमु तिन कार।।

— आदि ग्रंथ (जप जी 38, पृ॰8)

(ख) संत-सत्गुरु की कृपा से और सत्संगत से :

प्रभु अपनी अपार दया–मेहर से हमें इस मृत्युलोक में अपने मान्य प्रतिनिधि (संत–सत्गुरु) के पास भेज सकता है, और वे अंतर में 'शब्द' को प्रकट करके जीवात्मा को 'शब्द' से जोड़ देते हैं।

करमु होवै सतिगुरू मिलाए।।
सेवा सुरति सबदि चितु लाए।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰109)

पूरै सतिगुरि सबदु सुणाइआ।।
त्रै गुण मेटे चउथै चितु लाइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰3, पृ॰231)

सतिगुरु दाता सबदु सुणाए।।
धावतु राखै ठाकि रहाए।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰3, पृ॰232)

गुरु 'शब्द–देहधारी' है, 'शब्द–मुजस्सम' है और केवल वही 'शब्द' को प्रकट कर सकता है। यह दरअसल गुरु की ही भेंट है तथा इस मामले में कोई अन्य सहायता नहीं कर सकता।

पराई अमाण किउ रखीऐ दिती ही सुखु होइ।।

गुर का सबदु गुर थै टिकै होर थै परगटु न होइ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1249)

'शब्द' की भाषा मूक (गूँगी) है और यह बिन बोले प्रभु से प्रकट हो रही है। उसकी ही भाँति, सत्गुरु भी प्रभु का ज्ञान मूक भाषा में देता है। इस संदर्भ में मौलाना रूमी फ़र्माते हैं :

शैख़े-फ़अआल अस्त बे आलत चू हक्क,
बा मुरीदां दाद बे-गुफते सबक़।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.134)

(प्रभु की भाँति ही गुरु बिना किसी बाहरी यन्त्र के काम करता है और मूक भाषा में ही उन्हें ज्ञान प्रदान करता है।)

(ग) जन्म-जाति, दौलत-अमीरी, ज्ञान-बुद्धिमत्ता के अभिमान को छोड़कर सत्गुरु के चरण-कमलों में पूरी नम्रता के साथ शरण लेने से :

ब-शौ फ़ारिग़ ज़ इल्मो-ज़ुहद यकदम,
कश ज़ुरअ अज़ जामे-मुग़ाना।

— ख़्वाजा हाफ़िज़

(अपने आपे को ज्ञान और तपस्या के घमंड से तुरन्त ही छुड़ा लो और ['नाम' की] शराब की एक नशीली घूँट पी लो।)

जब तक ज़मीन तैयार न हो और ठीक समय में बीज न बोये जायें, तब तक किसी फल की उम्मीद कैसे की जा सकती है? इसी तरह से, जब तक ज़िंदगी के काँटे और झंझट मन से बाहर नहीं निकलते, तब तक यह मन शांत नहीं हो सकता। फिर भी, 'शब्द' के अभ्यास से यह वश में होता जाता है और समय के साथ निर्मल होकर एकाग्र हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप इसके अंदर परलोक की ज्योति परावर्तित होने लगती है।

जिचरु इहु मनु लहरी विचि है हउमै बहुतु अहंकारु।।
सबदै सादु न आवई नामि न लगै पिआरु।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰3, पृ॰1247)

इसलिये आंतरिक सफ़ाई, बाहरी सफ़ाई से बहुत ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इस के बग़ैर हम इस रास्ते पर कुछ भी तरक़्क़ी नहीं कर सकते।

'शब्द' की भक्ति क्या होती है? :

'धुन्यात्मक शब्द' को पूरी तन्मयता और एकाग्रता से सुनना ही सही क़िस्म की भक्ति है। 'शब्द' अति सूक्ष्म है और जब तक हम उतने ही सूक्ष्म नहीं बनते, हम संभवतः उससे नहीं जुड़ सकते। 'शब्द' यानी प्रभु की शक्ति सर्वव्यापी है, पूर्णतया चेतन है, कण–कण में समाई है; और यदि हमारी आत्मा, जो कि उसी तत्त्व से बनी है, जिससे प्रभु बना है, 'शब्द' से जुड़ पाती है, तो यह प्रभु के साथ ही जुड़ना है, क्योंकि प्रभु की अपनी सत्ता ('शब्द') से भिन्न नहीं है।

सबदि मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰27)

'शब्द' के साथ संबंध स्थापित करने के लिये यह ज़रूरी है कि आत्मा पहले अपने आपे को नाशवान जिस्म की क़ैद से आज़ाद करे। केवल एक पूर्ण सत्गुरु ही इसे इस क़ाबिल बना सकता है कि यह (रूह) मन और माया की जकड़न से बाहर निकले, जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर आए और उसके बाद प्रभु— ज़िंदगी की ज़िंदगी— यानी 'नाम' ('शब्द') से जुड़ सके।

'शब्द' सत्गुरू के किसी विरले भक्त को मिलता है :

प्रत्येक व्यक्ति प्रभु को आमने सामने देखना चाहता है, परन्तु कोई विरला जीव ही 'शब्द' के द्वारा इस पवित्र गठबंधन में बँध पाता है।

तेरे दरसन कउ केती बिललाइ।।
विरला को चीनसि गुर सबदि मिलाइ।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म॰1, पृ॰1188)

यह शरीर ही प्रभु का पवित्र मंदिर है, जिसके अंदर व बाहर प्रभु की सत्ता काम कर रही है। सभी व्यक्ति, अमीर व ग़रीब, पढ़े और अनपढ़, जवान और बूढ़े, आदमी और औरत, देश, रंग, जाति और धर्म के भेदभाव के बग़ैर, किसी समर्थ सत्गुरु की कृपा से अंतर में उस सत्ता से जुड़ने के योग्य हैं। इस तरह वे आसानी से और सहज रूप से 'शब्द' का अभ्यास कर उसके फल को पा सकते हैं।

हरि मंदरु हरि का हाटु है रखिआ सबदि सवारि।।
तिसु विचि सउदा एकु नामु गुरमुखि लैनि सवारि।।
— आदि ग्रंथ (प्रभाती बिभास म॰3, पृ॰1346)

बिन सबदै सभु जगु बउराना बिरथा जनमु गवाइआ।।
अंमृतु एको सबदु है नानक गुरमुखि पाइआ।।
— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰644)

मनमुख व्यक्ति, मन के अंदर उथल–पुथल होने के कारण, 'शब्द' को नहीं पहचान पाता और इस 'अमृत–रस' के प्रति पूरी तरह से अनजान रह जाता है।

मनु चंचलु बिधि नाही जाणै।।
मनमुखि मैला सबदु न पछाणै।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰415)

मनमुख नामु न जाणनी विणु नावै पति जाइ।।
सबदै सादु न आइओ लागे दूजै भाइ।।
— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰28)

'शब्द' क्या करता है? :

'शब्द' संपूर्ण रूपेण चेतन है। यह 'चेतनता के समुद्र' की एक लहर मात्र है। मनुष्य प्रभु–रूपी समुद्र की एक बूँद की भाँति है, और दोनों की ज़ात एक ही है। जबकि एक (प्रभु) समुद्र है, तो दूसरा ('शब्द') लहर है, और तीसरा (मनुष्य) उस चेतन की एक बूँद है। परम चेतन 'शब्द' की लहर, एक ताक़तवर चुंबक की तरह, आत्मा की चेतन बूँद को आकर्षित करके, अपने में खींचे बग़ैर नहीं रह सकती। आत्मा को तब तक विश्राम नहीं मिलता, जब तक कि 'शब्द की धारा' पर सवार होकर, यह अपने पिता के निवास में पहुँच कर मुक्ति प्राप्त न कर ले। 'शब्द' हमारे अंतर में धुनकारें दे रहा है और सुरत इससे जुड़कर सभी बंधनों को पार कर जाती है और उस असीम शाश्वतता में समा सकती है।

'सुरत' और 'शब्द' क़ुदरती तौर से एक दूसरे से संबंधित हैं। 'शब्द' में 'ज्योति' भी है और 'ध्वनि' भी, जिससे मन स्थिर हो जाता है और आत्मा,

मन के चंगुल से स्वतंत्र होकर बरबस 'शब्द' की ओर खिंची चली जाती है; और निज–घर पहुँचा दी जाती है, जहाँ से 'शब्द–ध्वनि' का निकास हो रहा है। दूसरी ओर, जो प्राणों के संयम यानी प्राणायाम योग के साधन अपनाते हैं, वे प्राणों की हद से आगे नहीं जा सकते, जो कि चिदाकाश या सूक्ष्म मंडल तक ही है। लेकिन शब्द–योगिन आज़ादी और बाइज़्ज़त से जहाँ चाहे जा सकता है, क्योंकि 'शब्द' हर जगह असीम रूप से व्याप्त है और अपने परमपिता परमात्मा के सच्चे घर पहुँच सकता है।

साहिबु मेरा सदा है दिसै सबदु कमाइ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म॰3, पृ॰509)

प्रभु को पाने का साधन भी 'शब्द' ही है। 'शब्द' के साथ ता'ल्लुक होने का अर्थ है, प्रभु के साथ जुड़ना।

सबदि मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰27)

'शब्द' ही एकमात्र मार्ग है, जो सच्चे बादशाह— परमात्मा के पास ले जाता है।

जीआ अंदरि जीउ सबदु है जितु सह मेलावा होइ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1250)

'शब्द' ही वह रास्ता है, जो कि 'सत्' तक ले जाता है। यह ऐसी पालकी है, जो जीव को सुरक्षापूर्वक भवसागर से पार करा कर स्वामी के महल में दाख़िल करा देती है।

परिपूर्ण परमात्मा और जीवात्मा, और इन दोनों को जोड़ने वाली कड़ी, 'शब्द'— ये तीनों मिलकर 'पावन त्रिपुटी' ('Holy Trinity') कहलाते हैं– क्योंकि परमात्मा की शक्ति एक साथ ही तीनों में काम कर रही है। इंसान की जीवात्मा (रूह) का परमात्मा से अलग कोई अस्तित्व नहीं है।

कहु कबीर इहु राम की अंसु।।

— आदि ग्रंथ (गोंड भगत कबीर, पृ॰871)

हालाँकि सभी आत्माएँ एक ही 'सत्' (सत्य) से जन्मी हैं, फिर भी प्रत्येक आत्मा यही अनुभव करती है कि उसका अपना अलग अस्तित्व है।

सचखंड या प्रभु की बादशाहत हमारे अंदर है, लेकिन सही मार्गदर्शन के बग़ैर उसमें कोई भी दाख़िल नहीं हो सकता। उसमें दाख़िल होने के लिये हमें अंतर्मुख होना होगा और एक छोटे बच्चे की तरह से नादान तथा पवित्र होना होगा, क्योंकि तभी हम उस जीवनदायी 'शब्द' को पकड़ सकते हैं, जो परमात्मा तक पहुँचाता है। 'शब्द' से जुड़कर, हम ख़ुशी और दर्द, मन और माया– प्रकृति के बंधनों से छूट जाते हैं, सुख और दुख आदि के द्वंद्वों से ऊपर उठ जाते हैं तथा जीवन–मृत्यु के चक्र से से मुक्ति हासिल कर लेते हैं।

'शब्द' परमात्मा की जीती–जागती चेतन जीवनधारा है, जिसने ही संसार की रचना की है और जो संसार का पालन–पोषण भी करती है। यह ऐसा जटिल बीज है, जो एक महान पेड़ जैसा विकसित हो गया है, जिसमें अनेक रंगों के फूल व फल लदे हुए हैं। जो कुछ अब अस्तित्व में है, वह इसी शाश्वतता में बसता है, और जिस वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, वह भी इसी शाश्वतता में समा जाती है। हर वस्तु उस महान गहराई के अंदर निहित है; वह उसकी सतह पर ज्वार–भाटों, लहरों, बुलबुलों आदि के रूप में क्षण भर के लिए उठती है और हमारी आँखों के सामने दृश्य–अदृश्य होती रहती है। इस प्रकार अव्यक्त स्वयं को नाना प्रकार के रूपों–प्रतिकृतियों में व्यक्त करता रहता है।

सृष्टि का मूल कारण 'शब्द' है, और यह सारी क़ायनात उसका ही नतीजा है। जो कुछ भी जड़ से फूट निकलता है, वह जड़ में पहले से ही सार रूप में मौजूद होता है और समय की पूर्ति होने पर फलता–फूलता है। सूर्य की एक किरण जब पॉलिश किये हुए परावर्तक पर पड़ती है, तो उसमें भी पूरा सूर्य दिखाई देने लगता है। इसी तरह से, जब मन साफ़ हो जाता है और उसमें अहंकार का नामोनिशान भी नहीं बचता, तो उसमें अंदर परमात्मा की ज्योति झलकने लगती है। जैसे सूर्य की किरण, सूर्य से भिन्न नहीं है, उसी तरह से आत्मा भी, जो परमात्मा की किरण ही है, उससे भिन्न नहीं है, और 'शब्द' विज्ञान के सही प्रशिक्षण और अभ्यास से यह प्रभु की गुप्त सत्ता को प्रकट करने लगती है।

'धुनात्मक शब्द' वही सच्चा 'शब्द' ('Word') है, जिसकी शिक्षा सेंट जॉन ने अपने सुसमाचारों में दी थी। इसी के द्वारा सृष्टि के सभी खंड–ब्रह्मंड

और उनके मंडल व उपमंडल बने, जो कि सर्वोच्च आत्मिक मंडल से लेकर नीचे स्थूल संसार तक, जिसमें हम निवास करते हैं, फैले हुए हैं। प्रभु में से निकलकर इस आत्म–धारा ने सृष्टि की रचना का चमत्कारिक कार्य किया और यही इसका पालन–पोषण कर रही है और इसे हर प्रकार से नियंत्रण में रखे हुए है। 'शब्द–धुन' का अभ्यास, जिसे कि सत्गुरुओं ने सभी देशों व सभी कालों में सिखाया है, सब से ऊँचा धर्म है और इससे हमें सबसे ऊँचा वरदान प्राप्त होता है– अर्थात् जीते–जी मन व माया–प्रकृति के बंधनों से आज़ाद हो जाना। लेकिन 'शब्द' के साथ ता'ल्लुक केवल उसकी कृपा से स्थापित किया जा सकता है, जो 'शब्द' गुरु हो, किसी अन्य के द्वारा नहीं।

एक मुस्लिम दरवेश, शम्स तबरेज़, 'शब्द' के बारे में इस प्रकार फ़रमाते हैं :

आमद निदाए बेचूँ नै अज़ दरूँ न बेरूँ,
नै चप नै रास्त नै पस नै अज़ बराबर आमद।
न ज़–पस्त–ओ नै ज़ बाला नै ग़रबी ओ न शरक़ी,
न ज़ आबो बादो–आतिश न ज़ ख़ाके अग़बर आमद।
गोई कि आँ चिह् सूईअस्त–आं सू कि जुस्तो–जूईस्त,
गोई कुजा कुनम रू आँ सू कि आँ सर आमद।
आँ सू कि ख़ुशक माही ज़ आबे–ख़िज़्र ज़िंदा,
आँ सू कि दस्ते–मूसा चूँ माहे–अनवर आमद।
आँ सू कि मेवहा रा पुख़्तगी रसीद आमद।
आँ सू कि संगे–ख़ारा औसाफ़े–गौहर आमद।
काफ़िर ब–वक़्ते सख़्ती रू आवुरद बदाँ सू,
ई सू चू दर्द बीनद–आँ सूश पा दर आमद।
दस्तूर नीस्त जां रा ता गोयद ईं बयाँ रा,
वरना ज़े कुफ़्र रुस्ती हर जा कि काफ़िर आमद।

– कुल्लीयात शम्स तब्रेज़ (पृ.312)

(एक आवाज़ आती है, जो न तो अंदर से, न ही बाहर से आती है। न बायें, न दायें से आती है। न पीछे से, न ही आगे से आती है। न तो ऊपर से, न ही नीचे से आती है। न पूर्व से, न पश्चिम से आती है। न ही यह आवाज़ पृथ्वी,

जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि तत्त्वों की है। तो फिर यह कहाँ से आती है? यह उस जगह से आती है, जिसकी तुम्हें तलाश है। जिधर से प्रभु अपने आप को प्रकट करता है, तुम अपना मुँह उधर ही करो। जिस तरह से पानी से बाहर एक मछली, ज़िंदा रहने के लिए पानी हासिल करती है, जिधर से हज़रत मूसा ने 'नूरे–इलाही' को देखा, जिस के प्रभाव से फलों को पकना नसीब होता है, जिस जगह के प्रभाव से पत्थर भी हीरे–जवाहरात में बदल जाते हैं, जिस ओर नास्तिक भी मुसीबत के समय मुँह करता है, जिस तरफ़ दुनिया के सभी इंसान अपनी आँसू भरी मुसीबतों में प्रार्थना के लिए मुँह उठाते हैं– ऐसे पवित्र स्थान का वर्णन करना हमें मना है, नहीं तो, यदि नास्तिक भी उसे सुनते, तो अपना नास्तिकवाद छोड़ देते।)

वास्तव में 'शब्द' उस दिशा से आ रहा है, जिस ओर आत्मा ने अग्रसर होना है। 'शब्द' के बग़ैर, आत्मा अँधेरे में रहती है और असहाय महसूस करती है।

सबद बिना सुरत आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (शब्द का अंग 14, पृ.93)

सभी संतों–महात्माओं ने 'शब्द' को ही मुक्ति का एकमात्र साधन माना है। लेकिन जब तक साधक किसी पूर्ण सत्गुरु से परा–विद्या की दीक्षा लेकर शरीर में दो भ्रूमध्य, आत्मा के ठिकाने पर सुरत की धारा को सिमटने का अभ्यास न कर ले, तब तक वह 'शब्द–धुन' को नहीं पकड़ सकता। ऐसा करना, जीवन की परिधि से जीवन के केंद्र की ओर हटना होगा, और यहाँ से 'शब्द–ध्वनि' को पकड़ कर, आत्मा अपने पिता के घर यानी निज–घर की ओर, जो स्वयं उस दिव्य संगीत का स्रोत है, अग्रसर होती है।

इस तरह से 'शब्द' हमें पूर्णतया एक नये जीवन की तरफ़ ले जाता है– जो कि आत्मा का जीवन है और हाड़–माँस के जीवन से बिल्कुल हटकर है। क्राइस्ट ने भी इस नये जीवन की शिक्षा दी थी, जिसे वक़्त बीतने के साथ–साथ हमारे ईसाई भ्रातागण भूल गये हैं। सैंट जॉन अपने सुसमाचारों में हमें इसके बारे में बतलाते हैं :

मैं तुम्हें सच–सच बतलाता हूँ कि जब तक एक व्यक्ति दुबारा जन्म नहीं लेता, तब तक वह प्रभु की बादशाहत में प्रवेश नहीं पा सकता।

मैं तुम्हें सच-सच कहता हूँ कि जब तक कोई मनुष्य जल ('जीवनदायी जल') और आत्मा से न जन्मे, तो वह प्रभु की बादशाहत में प्रवेश नहीं पा सकता। क्योंकि जो शरीर से जन्मा है, वह शरीर है और जो आत्मा से जन्मा है, वह आत्मा है। अचम्भा न कर कि मैंने तुझसे कहा कि तुम्हें अवश्य ही नए सिरे से जन्म लेना होगा।

हवा जिधर चाहती है, उधर से चलती है और तुम्हें उसकी आवाज़ सुनाई पड़ती है, परन्तु तुम यह नहीं बतला सकते कि वह किधर से आती है और किधर को जाती है। वे सभी भी ऐसे ही हैं, जो आत्मा से पैदा होते हैं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:3,5-8)

इज़ेकील, पुराना नियम में हमें यह मिलता है :

मैं तुम्हें एक नया हृदय दूँगा और तुम्हारें अंदर एक नई आत्मा रख दूँगा और मैं तुम्हारे शरीर में से पत्थर के दिल को निकालकर तुम्हें माँस का दिल दूंगा (जो दूसरों के दुख-दर्द को बाँट सके)।

– पवित्र बाइबिल (इज़ेकील 36:26-27)

आत्मा की यह नई ज़िंदगी उसी दिन से शुरू हो जाती है, जिस दिन से आपको परा–विद्या यानी आत्मा के रहस्यों की दीक्षा मिल जाती है। इसे आप जो चाहे कह लें— हिंदू इसे 'दीक्षा' कहते हैं, मुस्लिम इसे 'बैअत' कहते हैं, ईसाइयों में इसे 'बैपटिस्म' कहते हैं और सिक्खों में 'पाहुल' कहा जाता है। वैदिक महर्षियों ने इसे 'द्विजन्मा' कहा, जिसका अक्षरी अर्थ है, दुबारा जन्म लेना। आत्मा की ज़िंदगी, आध्यात्मिक विद्या के सिद्धांतों के मात्र वर्णन से प्राप्त नहीं होती, बल्कि रूहानी मंडलों में व्यक्त स्वरूप आत्मा की धारा के क्रियात्मक प्रमाण से। इसके द्वारा अदृश्य और अश्रव्य (जिसे सुना न जा सके) जीवन धारा को अंतर में देखने तथा सुनने योग्य कर दिया जाता है, जिससे सही मा'ने में, नास्तिक भी आस्तिक में परिवर्तित हो जाता है। इसके ('दीक्षा' के) द्वारा जीवन–आवेग का दान मिलता है, जिससे वो शरीर के रोम–रोम से बहने लगती है। इस प्रकार आत्मा अपने

सच्चे रूप को पहचान जाती है और सीमितता की दीवारों के परे ब्रह्मांडीय चेतनता पा जाती है; और यही है सच्चा पुनर्जन्म। शरीर से जीते-जी मरना, आत्मा के जीवन को पाना है।

सेंट पॉल इसको इस तरह से बयान करते हैं :

> मैं ईसा के साथ ही (क्रूस की) फाँसी पर चढ़ गया हूँ। फिर भी मैं जीवित हूँ। परन्तु यह मैं नहीं, बल्कि ईसा मुझमें बसता है।
>
> – पवित्र बाइबिल (गलातियों 2:20)

हाड़माँस की ज़िंदगी और आत्मा की ज़िंदगी, ये दो अलग-अलग चीज़ें हैं, एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न। यही कारण है कि यह कहा जाता है :

> जो जिस्म के जीवन को पा लेता है, वह आत्मा के जीवन को खो बैठता है और जो इस सांसारिक जीवन को मेरे लिये खो देता है, वह आत्मा के जीवन को पा लेता है।
>
> – पवित्र बाइबिल (मत्ती 10:39)

इसके बारे में गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

> सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ।।
>
> – आदि ग्रंथ (रामकली सिध गोसटि, म॰1, पृ॰940)

मुसलमानों ने इसे 'फ़ना-फ़िल-शैख़' होना कहा यानी सत्गुरु में मरना, जो कि सत्गुरु में जन्म लेना ही है, क्योंकि यह मौत, एक नये जीवन की शुरूआत है।

इस तरह से 'शब्द' हमें अज्ञानता से, जो मन और माया का गुण है, बाहर निकालता है, हमें पवित्र करता है और हमें एक नई ज़िंदगी का वरदान देता है– वह ज़िंदगी, जो आत्मा की है, जो शाश्वत और अपरिवर्तनीय है– साधक इस जिस्म और जिस्मानी ता'ल्लुकात से हमेशा के लिये नाता तोड़ता जाता है और बाहरी आँखों के बग़ैर ही एक नई दुनिया को देखना शुरू कर देता है।

> *पवन सूतु सभु नीका करिआ सतिगुरि सबदु वीचारे।।*
> *निज घरि जाइ अमृत रसु पीआ बिनु नैना जगतु निहारे।।*
>
> – आदि ग्रंथ (नट म॰4, पृ॰983)

'शब्द–धुनि' को सुनने के लिये अमृत वेला या ब्रह्म–मुहूर्त का समय सबसे बढ़िया माना गया है, क्योंकि उस वक़्त मन, सोने से उठने पर ताज़ा होता है और अभी उसने रोज़ाना की भौतिक ज़िंदगी के नित्यक्रम में भटकना नहीं शुरू किया होता है।

नाउ प्रभातै सबदि धिआईऐ छोडहु दुनी परीता।।
प्रणवति नानक दासनि दासा जगि हारिआ तिनि जीता।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰1, पृ॰1330)

अंमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु।।

— आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 4, पृ॰2)

'शब्द' की नेमतें :

'शब्द' के साथ जुड़ने से असीम वरदान प्राप्त होते हैं। यह हर प्रकार की ऊर्जा या शक्ति का भंडार है— चाहे वह प्राणों की शक्ति हो या बिजली की और चुंबकीय शक्ति हो। हर क़िस्म का जीवन 'शब्द' का ही व्यक्त रूप है। जो कुछ भी दुनिया में है, सभी 'शब्द' से बना है और ऐसा कुछ भी नहीं, जो 'शब्द'— वह जीवन–धारा, जो कि पर्यावरण के अंदर और बाहर गूँजती रहती है, से न बना हो। जो 'शब्द' के साथ जुड़ते हैं, इसे अपना जीवन आधार मानते हैं, वे परमपिता के, जो कि परम जीवन और परम ज्योति है, सच्चे शिशु हैं। 'शब्द' ही 'जीवन की रोटी' है, जो सचखंड से उन सभी जीवों के लिये उतरती है, जो नेकी ('सत्') को पाने की भूख रखते हैं, और 'शब्द' ही वह 'जीवन का जल' है, जो आत्म–ज्ञान और प्रभु–ज्ञान के प्यासी आत्माओं की प्यास बुझाता है। सचखंड की ज्योति की धूप में जो नहाते हैं, उन्हें सच्चे प्यार, विवेक और शक्ति के महानतम उपहार मिलते हैं।

(क) मन वश में आ जाता है और शरीर के अहंकार और काम वासना से रहित हो जाता है :

हमेशा ही बेचैन रहने वाले मन को क़ाबू करने का कोई इलाज नहीं। व्यक्ति सभी तरीक़ों से— जैसे कि व्रत, उपासना, रीति–रिवाज़, उपवास

और जागरण, तीर्थयात्रा, प्रदक्षिणा, पवित्र नदियों में स्नान, दान व परोपकार के कर्मों आदि से– प्रयत्न करता है, परन्तु उन सभी के द्वारा आंतरिक शांति को हासिल नहीं कर सकता। इसके विपरीत, ये सभी कर्मकांड उसके अहंकारी प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं, जो कि सभी बुराइयों का मूल कारण है। महर्षि वशिष्ठ, भगवान रामचंद्र जी महाराज को शिक्षा देते हुए कहते हैं, "थोड़ी देर के लिये मैं यह मान सकता हूँ कि किसी ने महान हिमालय पर्वत को उठा लिया या सभी समुद्रों के जल को कोई पी गया, परन्तु मैं यह नहीं मान सकता कि किसी ने मन को क़ाबू कर लिया हो।" लेकिन 'शब्द–धुन' को सुनकर सभी पूर्ववती कर्मों के लेख मिट जाते हैं। 'शब्द' की कमाई ऐसी आग की चिंगारी है, जो मन की तमाम गंदगियों को ऐसे जला डालती है, जैसे सूखी घास का ढेर आग लगने से तुरन्त ही राख हो जाता है। संचित कर्मों का भंडार बारूद के समान जल कर भस्म हो जाता है और एक दफ़ा, इस भारी–भरकम बोझे से आज़ाद हो जाने पर, मन और आत्मा 'शब्द–धुन' में इस प्रकार तल्लीन हो जाते हैं, जैसे आस–पास की दुनिया से बेख़बर होकर पतंगा दीये की लौ के समक्ष मस्त हो जाता है।

मन आनंददायी वृत्तियों के पीछे भागता है, जो अधिकतर दो प्रकार की होती हैं : एक, तो सुन्दर नज़ारे अर्थात रूप–प्रतिकृतियाँ और दूसरे, मधुर आवाज़ों की राग–रागिनियाँ। 'शब्द' में भी ये दोनों ही ख़ासियतें हैं यानी स्वर्गों का संगीत और दिव्य ज्योति– और जब यह 'दिव्य संगीत' और 'दिव्य ज्योति' प्रकट होते हैं, तो मन बस में आ जाता है और संसार के क्षणिक सुखों के पीछे भागना छोड़ देता है। धीरे–धीरे सांसारिक वस्तुओं का आकर्षण कम होने लगता है और वे सभी निर्जीव, नीरस और फीकी पड़ जाती हैं।

'ज़िंदगी के अमीं' का एक घूँट पीकर मन स्थिर हो जाता है और 'शब्द–धुन' को सुनने के अलावा इसको स्थिर करने का और कोई तरीक़ा नहीं।

बिनु गुर सबदै मनु नही ठउरा।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰415)

मनूआ असथिरु सबदे राता एहा करणी सारी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰908)

'शब्द' की कमाई से मन की झील में हिलोरें उठना बंद हो जाती हैं :

मन के तरंग सबदि निवारे रसना सहजि सुभाई।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰3, पृ॰1233)

इहु मनूआ खिनु ऊभि पइआली जब लगि सबद न जाने।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰1, पृ॰1345)

'शब्द' उस्तरे की धार से भी तेज़ होता है और यह सारे सांसारिक बंधन काट डालता है, पाँचों मनोविकार रूपी शत्रुओं को जीत लेता है और इंसान को उन सभी बेड़ियों से मुक्ति दिला देता है, जो उसे प्यारी लगती हैं। जब सुरत इनसे आज़ाद हो जाती है, तब वह बंधनरहित होकर अपने परमपिता के घर की ओर उड़ने लगती है।

पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि।।

— आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ॰1366)

(ख) अहंकार से सारा संसार ही ग्रस्त है, जिससे छूटने का इलाज 'शब्द' है :

हउमै रोगी जगतु उपाइआ बिनु सबदै रोगु न जाई।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰3, पृ॰1130)

हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि।।
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि।।

— आदि ग्रंथ (आसा वार म॰1, पृ॰466)

गुर कै सबदि हउमै बिखु मारे।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰3, पृ॰1133)

नानक हउमै सबदि जलाइआ।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म॰1, पृ॰1189)

शम्स तबरेज़ भी अहंकार (हौंमें) के इलाज के लिये 'शब्द' की औषधि की सिफ़ारिश करते हैं :

अगर उफ़्तद बगोशत सौते आँ कौस, .ज किब्र व अज हसद याबद रहाई।
समाए इश्के ओ नागाह आयद, तुरा बरहानद अ.ज जाने हवाई।

(जब तुम बिगुल बजने की आवाज़ सुनोगे, तो तुम सभी घमंड और वासनाओं से छूट जाओगे। जब सुरीली आवाज़ें तुम्हारे कानों में सुनाई पड़ेंगी, तब तुम इंद्रियों के घाट की ज़िंदगी से आज़ाद हो जाओगे।)

(ग) 'शब्द' आंतरिक शांति और स्थिरता प्रदान करता है :

प्रत्येक इंसान शांति और स्थिरता की भरसक तलाश में है, मगर वह उसे हासिल नहीं हो पाती। जिस्म के सभी सुख क्षणभंगुर हैं, आकाश में उड़ते बादलों के समान अस्थाई हैं। जो थोड़ा बहुत सुख उन इंद्रियजनित प्रक्रियाओं में प्रतीत होता है, वह हमारे अपने ध्यान के उनमें टिके रहने के कारण है, और हमारे ध्यान के सिवाय इन सुखों का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। हमारी हालत उस कुत्ते के माफ़िक है, जो सूखी हड्डी चूसते–चूसते अपने मुँह में ज़ख़्म कर लेता है और उसी से निकलते ख़ून को चूस कर ख़ुश होता है। वह इसी भ्रम में रहता है कि यह सब आनंद सूखी हड्डी में ही है।

आत्मा एक चेतन हस्ती है, उसे जड़ और अचेतन वस्तुओं से, जिनमें जीवन–सिद्धांत केवल एक निष्क्रिय या गुप्त अवस्था में है, भला सुख कैसे मिलेगा? उसे तो महाचेतनता के स्रोत से जुड़कर ही अपना भोजन और ख़ुराक़ मिल सकती है। गुरु के द्वारा श्रवणीय किया गया 'शब्द' महाचेतनता की सक्रिय धारा है और उसके संपर्क में आकर ही आत्मा सच्चे सुख और आनंद का अनुभव पाती है।

गुर कै सबदि सुखु सांति सरीर।
गुरमुखि ता कउ लगै न पीर।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰361)

'शब्द' में महाआनंद है, यह शरीर और मन को मोह लेता है और दोनों ही अकथनीय रूप से शीतल हो जाते हैं।

अंतरि अगनि सबल अति बिखिआ हिव सीतलु सबदु गुर दीजै।।
तनि मनि साँति होइ अधिकाई रोगु काटै सूखि सवीजै।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1325)

सागरु सीतलु गुर सबद वीचारि।।
मारगु मुकता हउमै मारि।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰1, पृ॰1274)

जब सुरत 'शब्द' से जुड़ती है, तो वह प्रभु में समाकर सचमुच का आशीष पा जाती है।

सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰62)

सदा अनंदि रहै दिनु राती एक सबदि लिव लाई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1265)

महा अनंदु गुर सबदु वीचारि।
प्रिअ सिउ राती धन सोहागणि नारि।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰370)

(घ) 'शब्द' से प्राप्त होने वाले लाभ :

सिक्ख धर्मग्रंथों में हमें 'शब्द' से प्राप्त होने वाले अनगिनत लाभों का वर्णन मिलता है।

'शब्द' से तमाम इच्छाओं, तृष्णा, आशा, मनसा और सूक्ष्म मोह–माया का जड़–शाखा से नाश हो जाता है।

तृसना अगनि सबदि बुझाए। दूजा भरमु सहजि सुभाए।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुओररी म॰1, पृ॰222)

आसा मनसा सबदि जलाए। राम नराइणु कहै कहाए।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰413)

माइआ मोहु सबदि जलाए।।
मनु तनु हरिआ सतिगुर भाए।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म॰3, पृ॰1173)

जब एक बार जीवन–धारा सुनाई देने लग जाए, तो फिर साधक कभी अकेला महसूस नहीं रहता, क्योंकि वह उसकी गूँज को सुनता रहता है, चाहे कहीं भी हो– घर में या बाहर। प्रभु की आवाज़ उसे प्रभु के सच्चे घर की याद दिलाती रहती है। 'शब्द' का अभ्यास उसे तमाम बुराइयों और बीमारियों से मुक्त करा देता है तथा वह पाँच विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद), तन और मन की वासनाओं से छूट जाता है, जिससे आत्मा संसार व सांसारिकता से बैरागी होकर, अपनी आदि निर्मलता प्राप्त

कर लेती है। इस संसार की यात्रा में और अगली दुनिया में भी, 'शब्द' एक छड़ी का सहारा है। इस जिस्म से ऊपर उठने का अनुभव मिल जाने से साधक मरने के भय से मुक्त हो जाता है और जब सांसारिक यात्रा का समय पूरा हो जाता है, तो वह हमेशा के लिये अपने हाड़–माँस के शरीर को ख़ुशी–ख़ुशी ऐसी आसानी से त्याग देता है, जैसे कोई अपने फटे–पुराने कपड़े त्याग देता है और जन्म–मरण के चक्र से आज़ाद हो कर, आदरपूर्वक अपने परलोकीय घर को चल देता है।

'शब्द' के अभ्यास से दिव्य ज्योति अंतर में प्रकट होती है और जीव दिव्य आशीष की अनुभूति करने लगता है। जीव अपने आपका और प्रभु का अंतर्बोध करने लगता है और अपने अंतर में यह महसूस करने लगता है कि आत्मा उसी एक जीवन–सिद्धांत का अभिन्न अंग है, अपने अंदर और बाहर, बिना किसी देश या काल की सीमा के, जो सर्वत्र मौजूद है, क्योंकि शाश्वतता से शाश्वतता तक, संसार में तमाम जीवन तत्त्व एक ही है, चाहे यह अनेक रूपों और नमूनों में क्यों न प्रकट हो। जिस क्षण साधक काल की सीमा से ऊपर उठ जाता है, वह स्वयं भी अकाल स्वरूप हो जाता है। यही वास्तव में सच्चा ध्यान और सच्ची भक्ति है, जिससे प्रभु के और उसकी सृष्टि के प्रति सच्चा प्यार पैदा होता है और जिससे जीव का अपना आपा फैलकर परमात्मा से एकरूप हो जाता है।

यही जीवनमुक्ति अथवा संसार में जीते हुए उससे मुक्त होना है, जैसे कीचड़ भरे तालाब में जल के ऊपर खिला कमल का फूल नीचे की गंदगी से अछूता रहता है। जो व्यक्ति 'शब्द' से संबंध स्थापित नहीं करते, वे कष्ट भोगते रहते हैं, क्योंकि वे हमेशा ही काल–सत्ता की गिरफ़्त में रहते हैं और लगातार सृष्टि के महान चक्र में अपने कर्मों के अनुरूप– चाहे वे कैसे भी हों, ऊपर–नीचे चक्कर काटते रहते हैं। वे जीवन चक्र के अंतर्गत ही मरते और जन्म लेते रहते हैं और इससे बचने का कोई रास्ता नहीं, जब तक कि वे किसी शब्द–स्नेही गुरु से न मिलें और उस की कृपा से वे 'शब्द' मार्ग पर चल सकें; और यही वह अकेला रास्ता है, जिस पर चल कर आत्मा मुक्ति प्राप्त कर सकती है।

'ज़िंदगी का पानी' ('हौज़–ए–क़ौसर' या 'प्रयाग–राज') आत्मा की गहनतम गहराइयों में छिपा हुआ है, और वहाँ पहुँचने का रास्ता बिल्कुल

चुप्पी की अवस्था में 'शब्द' के द्वारा मिलता है। जीवन की चहल पहल में रहते हुए, यदि हम उसे पाने की कोशिश भी करते हैं, तो भी हम उसे बाहर ही ढूँढते हैं, जैसे अन्य वस्तुओं को, और इस कोशिश में बुरी तरह से असफल रहते हैं। लेकिन जो सही तरीक़े से ढूँढता है और किसी 'शब्द–सदेह' समर्थ सत्गुरु द्वारा, सही रास्ते पर डाल दिया जाता है, तो वह इस 'अमृत' को पी सकता है और 'दिव्य–अन्न' को चख सकता है और अमरत्व को पा जाता है।

मैं ज़िंदगी की रोटी हूँ; जो मेरे पास आयेगा, वह कभी भूखा नहीं रहेगा और जो मुझ पर यक़ीन करेगा, कभी प्यासा नहीं रहेगा...

मैं वो ज़िंदा रोटी हूँ, जो स्वर्ग से उतर कर आई है। जो कोई इंसान इस रोटी को खायेगा, वो सदा के लिए अमर हो जायेगा...

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 6:35,51)

जो पानी मैं देता हूँ, जो कोई इसे पियेगा, वह कभी प्यासा नहीं रहेगा। लेकिन जो पानी मैं उसे दूँगा, वह उसके अंदर जाकर ऐसा स्रोत बन जायेगा, जो अनंत जीवन के लिए उमड़ता रहेगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 4:14)

सरब रोग का अउखदु नामु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰274)

'शब्द' अनहद (अविरल) या अनाहत (प्रहारविहीन) है :

'शब्द' दो तरह का होता है– 'अहत' और 'अनाहत'। 'अहत शब्द' वह है, जो तब पैदा होता है, जब कि दो या अधिक चीज़ें, एक दूसरे से टकराती हैं। सारे ही संसार की तमाम बाहरी आवाज़ें, इसी श्रेणी में आती हैं। 'अनाहत' वह आवाज़ है, जो कि 'हत' (दो या दो से अधिक चीज़ों का टकराना) पर निर्भर नहीं करती यानी प्रहारविहीन है। 'अना. हत ध्वनि' किसी पर निर्भर नहीं। मुस्लिम सूफ़ी दरवेश इसे 'अनहद'

(निरन्तर, शाश्वत तथा असीम) कहते हैं। शाह नियाज़ इसके बारे में फ़रमाते हैं :

बिशनवी यक़ कलामे–लामक़तूअ,
अज़ हुदूसो–फ़ना बवद मरफ़ूअ।
अव्वलो–आख़िरश चूं बेहद शुद,
ज़ाँ सबब नामे ऊ ब–आँहॅद शुद।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90-91)

(तुम उस अनवरत और कभी समाप्त न होने वाले संगीत को सुनो! वह संगीत अमर है और मृत्यु की सीमा से परे है। इसका आरंभ और अंत है ही नहीं, इसी लिये इसे 'अनहद' कहा जाता है।)

परिपूर्ण 'सत्' (Absolute Truth) छाया–रहित और ध्वनि–रहित है, क्योंकि तमाम प्रतिकृतियाँ और ध्वनियाँ उस शाश्वत बीज में गुप्त रूप से पूर्णता की स्थिति में रहती हैं।

सरब थान को राजा। तह अनहद सबद अगाजा।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰621)

तिसु रूपु न रेख अनाहदु वाजै सबदु निरंजनि कीआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰351)

'शब्द' के अंदर ज्योति है, जिसमें से संगीत निकलता है।

सहज गुफा महि आसणु बाधिआ।।
जोति सरूप अनाहदु वाजिआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰370)

धुनि वाजे अनहद घोरा।।
मनु मानिआ हरि रसि मोरा।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰879)

ये 'अनाहत–धुन' (अपने आप बजने वाला संगीत) हर वक़्त बजती रहती है, यह अनंत रूप से अखंड है :

अनहत धुनि वाजहि नित वाजे हरि अंमृत धार रसि लीड़ा।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰4, पृ॰698)

अनहद सबदु वजै दिनु राती।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰904)

'अनहद–धुनि' अति रसीली और अकथनीय है :

अनिक अनाहद आनंद झुनकार।।
उआ रस का कछु अंतु न पार।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1236)

प्रभु के दरबार में अनगिनत धुनें बज रही हैं :

जनम जनम के दूख निवारे।।
अनहद सबद वजे दरबारे।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1137)

देव सथानै किआ नीसाणी।।
तह बाजे सबद अनाहद बाणी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत बेणी, पृ॰974)

दरि वाजहि अनहत वाजे राम।।
घटि घटि हरि गोबिंदु गाजे राम।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰578)

रहै गगन पुरि द्रिसटि समैसरि अनहत सबदि रंगीणा।।

— आदि ग्रंथ (रामकली दखणी म॰1, पृ॰907)

उस 'दिव्य संगीत' से तभी जुड़ा जा सकता है, जब साधक जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर आ जाये :

नउ दर ठाके धावतु रहाए।। दसवै निज घरि वासा पाए।।
ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰124)

मूंदि लीए दरवाजे।। बाजीअले अनहद बाजे।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ भगत कबीर, पृ॰656)

भाई गुरदास जी इस तरह से फ़रमाते हैं :

शबद सुरति लिव लीण होइ अनहद धुन धीरा।।
शबद सूरति लिव लाइ अनहद वाइआ।।

— भाई गुरदास, वारां (19, पृ॰ 8: 20)

'अनहद–शब्द' के साथ जुड़ना ही संपूर्ण ज्ञान व सच्ची भक्ति है, और यही अनंत 'उद्गीथ' है, जो प्रभु और इंसान का गुणगान करता रहता है।

गिआन धिआन पूरन परमेसुर हरि हरि कथा नित सुणीऐ राम।।
अनहद चोज भगत भव भंजन अनहद वाजे धुनीऐ राम।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰783)

इंद्रियों के घाट से ऊपर आने पर ही 'अनहद शब्द' से संबंध स्थापित किया जा सकता है। बग़ैर सत्गुरु की कृपा, सहायता और मार्गदर्शन के, अपने निज के प्रयत्नों से, कोई उस तक नहीं पहुँच सकता। इसका अनुभव सिर्फ़ सत्गुरु की कृपा (गुरु–प्रसाद) से ही हो सकता है।

अनहद सबदि सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰21)

कहु नानक जिसु सतिगुरु पूरा।।
वाजे ता कै अनहद तूरा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰393)

केवल 'अनहद–शब्द' ही वह रास्ता है, जो प्रभु तक जाता है और इस अमर 'संगीत' के अंतर में प्रकट होने पर ही साधक प्रभु के नशे का आनंद ले सकता है।

अनहत वाजे वजहि घर महि पिर संगि सेज विछाई।।
बिनवंति नानकु सहजि रहै हरि मिलिआ कंतु सुखदाई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰247)

केवल किसी गुरुमुख के अंतर में ही यह 'दिव्य संगीत' प्रकट हो सकता है :

तिनि करतै इकु चलतु उपाइआ।। अनहद बाणी सबदु सुणाइआ।।
मनमुखि भूले गुरमुखि बुझाइआ।। कारणु करता करदा आइआ।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰3, पृ॰1154)

'अनहद–शब्द' के अभ्यास से साधक सभी पापों और वासनाओं से पवित्र हो जाता है और अपने सभी पिछले जन्मों के कर्मों के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। वो आत्म–अनुभव और प्रभु–अनुभव के द्वारा ब्रह्म और पारब्रह्म में पहुँचता है और उससे भी आगे निज–घर, सचखंड में पहुँच

जाता है, जोकि उसकी शाश्वत बपौती है। समर्थ सत्गुरु की दया से 'खोया हुआ शब्द' जीव के लिये जीवंत हो उठता है, जिसे वे चाहें, उसे वे इसे मुफ़्त भेंट रूप में दे सकते हैं।

'पंच शब्द' या पाँच धुनें :

'अनहद शब्द' का संगीत विविध क़िस्म का है और समर्थ सत्गुरु की कृपा से ही वह प्रकट होता है।

अनिक अनाहद आनंद झुनकार।।
उआ रस का कछु अंतु न पार।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1236)

भाई गुरदास जी हमें इस बारे में बतलाते हैं :

अनहद नाद असंख सुणि होए हैराणै।।

— भाई गुरदास, वारां (13)

इन में से सिर्फ़ पाँच धुनें अति महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं और धर्मग्रंथों में उनका बड़ा गुणगान है।

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी।।
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती भगत कबीर, पृ॰1350)

पंचे सबद वजे मति गुरमति वडभागी अनहदु वजिआ।।

— आदि ग्रंथ (कानड़े की वार म॰4, पृ॰1315)

पंच सबद निरमाइल बाजे।। ढुलके चवर संख घन गाजे।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत बेणी, पृ॰974)

क्योंकि ये 'पाँच शब्द' प्रभु के सिंहासन से निकले हैं, इसीलिये प्रभु को धर्मग्रंथों में 'पंच–शब्दी' (पाँच शब्दों के स्वामी) कहा गया है।

वीवाहु होआ सोभ सेती पंच सबदी आइआ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰1, पृ॰765)

'शब्द' की ये पाँच ध्वनियाँ प्रभु से निकली हैं और ये ही वापिस प्रभु से मिलने का साधन भी हैं। संतों ने भी 'शब्द' की उपासना की है। जपुजी में हमें मिलता है :

पंचा का गुरु एकु धिआनु।।

– आदि ग्रंथ (जप जी 16, पृ॰3)

भाई गुरदास जी हमें बतलाते हैं कि जब साधक जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर उठ जाता है, तभी उसे 'पाँच शब्दों' के गीत का अनुभव मिलता है।

पंजे तत उलंघिआ पंजि सबद बजी वाधाई।

– भाई गुरदास, वारां (29)

सत्गुरु का कोई विरला शिष्य ही 'पाँच शब्दों' का अभ्यास करते हुए प्रभु की बादशाहत में पहुँचता है।

गुरमुखि सुनणा सुरति करि पंचशबदु गुरशबदि अलापै।।

– भाई गुरदास, वारां (6)

पंचाइण परमेसरो पंच शब्द घनघोर नीसाणा।।

– भाई गुरदास, वारां (7, पौड़ी 5)

सभी संतों और महात्माओं ने 'पाँच शब्दों' का उपदेश दिया है। महान सूफ़ी और आध्यात्मिक कवि, हाफ़िज़ साहिब 'पाँच नौबतों' (आवाज़ों) का वर्णन करते हैं :

ख़ामोश ओ पंज नौबत बिशनौ ज़ आसमाने,
क–आँ आसमाने बेरूँ जां हफ़्त ओ ईं शश आमद।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ (पृ.138)

(गगन से जो 'पाँच नौबतें' आ रही हैं, ख़ामोश होकर उनको सुन! वो गगन छः चक्रों और सात आसमानों से परे है।)

शम्स तबरेज़ का उपदेश भी 'पाँच शब्दों' का ही है।

हर रोज़े पंज नौबत बर दरे–ऊ,
हमी कोबंद क़ौसे–किब्रयाई।
अगर उफ़्तद–बिगोश्त सौते–आँ कौस,
किब्र ओ अज़ हसद या–बे रहाई।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ (पृ.405)

(हर रोज़ उस प्रभु के दरवाज़े पर पाँच नगाड़ों जैसी आवाज़ें होती हैं, जो उसकी महानता की घोषणा करती हैं। अगर उन का संगीत तुम्हारे कानों में पड़ता, तो तुरन्त ही तुम तमाम अहंकारों से छूट जाते।)

आगे, शम्स तबरेज़ हमें बतलाते हैं कि ये 'पाँच नौबतें' (आवाज़ें) तभी सुनाई पड़ सकती हैं, जबकि साधक अपना डेरा सातवें आसमान पर जमाये (अर्थात् पिंड के छः चक्रों से ऊपर उठ कर, सूक्ष्म लोक के पहले मंडल में दो भौहों के बीच और पीछे आ जाए)।

ब–हफ़्तम चर्ख़ नौबत पंच दारी,
चू ख़ैमा ज़ शश जहत बरकंदा बाशी।

— कुल्लीयात शम्स तबरेज़ (पृ.824)

(जैसे ही तुम अपना पड़ाव छः आसमानों के ऊपर डालोगे, सातवें आसमान पर तुम नौबतों को सुनोगे।)

'शब्द–धारा', वास्तव में एक एकल अविरल सर्जनात्मक जीवन–सिद्धांत है, जो विशुद्ध प्रभु से निकल कर, एक लोक से दूसरे लोक में उतरकर नीचे के पाँच मंडलों की रचना करती है। ये मंडल हैं : विशुद्ध चेतन (सचखंड), महा–कारण (पार–ब्रह्म), कारण, सूक्ष्म और स्थूल; और जैसे–जैसे यह धारा इन मंडलों से गुज़रती है, क्योंकि इनमें से प्रत्येक स्थान का घनत्व (density) अलग–अलग होता है; इसलिए इस 'शब्द–धारा' का स्वर भी उसके अनुसार बदलता जाता है और इस प्रकार यह 'पाँच शब्दों' का संगीत कहलाता है। त्रिकुटी तक दो 'शब्द' हैं, उससे आगे पार–ब्रह्म तक दो और हैं और पाँचवाँ शब्द सतलोक का है। ये पाँचों 'शब्द' सतलोक में जाकर पूर्ण व प्रचुर रूप से विकसित हो जाते हैं। 'शब्द' का भेद किसी शब्द–मार्गी गुरु से ही मिल सकता है और पाँच शब्दों के अभ्यास से सुरत शनैः शनैः 'पंच–शब्दी प्रभु' के पास पहुँचाई जाती है।

गुर परसादी पिरम कसाई।।
मिलउगी दइआल पंच सबद वजाई।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰3, पृ॰1128)

सभी पाँच ध्वनियाँ एक मनोहर स्वरसंगति के अनुरूप बजती हैं, और जो कोई अपनी सुरत की धारा को केन्द्रित कर अन्तर्मुख होकर देहध्यास से ऊपर उठता है, अवश्य ही वह उन्हें सुन सकेगा।

जितु गृहि गुन गावते हरि के गुन गावते राम गुन गावते
तितु गृहि वाजे पंच सबद वड भाग मथोरा।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰4, पृ॰1201)

धर्मग्रंथों में कहा गया है कि इन धुनों की गुंजार माथे पर व्यक्त होती है :

पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तउ मिटिआ न जाई।।
तेरे दुआरै धुनि सहज की माथै मेरे दगाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत कबीर, पृ॰970)

तो फिर यह स्वरसंगति कहाँ स्थित है? मस्तक के किस भाग में? इस 'अनहद–धुनि' को दो आँखों के बीच और थोड़ा पीछे, सुषुम्ना नाड़ी के अंदर तलाशा जा सकता है, और वहीं पर ही साधक इसे सुन पाता है।

सुखमन कै घरि रागु सुनि सुनि मंडलि लिव लाइ।।

— आदि ग्रंथ (मलार की वार म॰1, पृ॰1291)

मुस्लिम सूफ़िओं, फ़क़ीरों, दरवेशों ने इसे 'शाह–रग' और 'मेहराब' कहा है, जिसका मतलब है, वह ज़िंदगी की डोर, जो स्वर्ग के बंदनवार (मस्तक) में से गुज़रती है।

दर नमाज़म ख़ाम अबरूए तू चूं याद आमद।
हालते हस्त कि मेहराब ब फ़रयाद आमद।

— ख़्वाजा हाफ़िज़

(हे सत्गुरु! जब मैं ध्यानमग्न होता हूँ, मैं तेरी प्यारी सूरत के दर्शन करता हूँ। तब एक स्वरलहरी मेरे माथे की मेहराब के केन्द्रीय पत्थर पर सुनाई देती है।)

बुल्लेशाह कहते हैं :

अल्लाह शाह रग तों नज़दीक़।

कुरान में कहा गया है :

नह्नु अक़रबु इलेही मिन हवल अल–वरीद।

— कुरान शरीफ़ (50:16)

(मैं तेरी शाहरग से भी नज़दीक हूँ।)

जो एक समर्थ सत्गुरु के मार्गदर्शन में 'सुरत–शब्द योग' का अभ्यास करते हैं, वे अपने आपकी और प्रभु की गुत्थी को सुलझाना शुरू कर देते हैं और सर्वव्यापी प्रभु को दोनों अंदर–बाहर देखने लग जाते हैं। दूसरे, 'शब्द' के विभिन्न स्वरों से वे यह भी जान जाते हैं कि वे अपनी रूहानी यात्रा में किस मंज़िल पर पहुँचे हैं, क्योंकि ये 'शब्द' के स्वर इस रास्ते पर 'मील के पत्थर' का काम देते हैं और इस तरह उसे भटकने से बचाते रहते हैं।

और जब कभी तुम दाहिनी या बायीं ओर मुड़ने लगो, तब तुम्हारे पीछे से यह वचन तुम्हारे कानों में पड़ेगा, 'मार्ग यही है, इसी पर चलो'।

— पवित्र बाइबिल (यशायाह 30:21)

किसी अनुभवी सत्गुरु से दीक्षा लेकर, उसके 'शब्द' का अभ्यास करके 'पंच–शब्द' का मार्ग पाया जा सकता है।

पंचे सबद वजे मति गुरमति वडभागी अनहदु वजिआ।।

— आदि ग्रंथ (कानड़े की वार म॰4, पृ॰1315)

पाँच मंडलों से संबंधित 'पाँच शब्दों' को दीक्षा के समय संत–सत्गुरु विस्तार से समझाते हैं, और जैसे–जैसे शिष्य, कमाई करके, एक मंडल से दूसरे में पहुँचता है, तो वह स्वयं ही सत्गुरु के शब्दों की सच्चाई को प्रमाणित कर लेता है।

धन्य है वह शरीर–रूपी हरि–मंदिर, जिसमें ये 'पंच–शब्द' प्रकट हो जाते हैं और निज–घर का रास्ता खुल जाता है।

वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै।।
घरि सभागै सबद वाजे कला जितु घरि धारीआ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, अनंद, पृ॰917)

पंच सबद झुणकारु निरालमु प्रभि आपे वाइ सुणाइआ।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1040)

पंजे शब्द अभंग अनहद केलिआ।।

— भाई गुरदास, वारां (3)

पंच सबद तह पूरन नाद।।
अनहद बाजे अचरज बिसमाद।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰888)

अनहद बजहि सदा भरपूर।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत कबीर, पृ॰971)

ये पाँच धुनकारें मिलकर एक पूर्ण 'शब्द' बन जाती हैं, जो मन के लिए लोरी बनकर उसे हमेशा के लिए सुला देता है और इस प्रकार, आत्मा को त्रिगुण्यात्मक बंधन से मुक्त कर देता है, जिसके बाद वह कभी भी जन्म–मरण के चक्र में वापिस नहीं लौटती।

शबद सुरति लिव साध संग पंच शबद इक शबद मिलाए।।

— भाई गुरदास, वारां (5)

एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰1, पृ॰795)

साखा तीनि निवारीआ एक सबदि लिव लाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰66)

सदा अनंदि रहै दिनु राती एक सबदि लिव लाई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1265)

जिन्होंने उस एक 'शब्द' के साथ अपनी लिव लगा ली है, वे बलिहारी जाने लायक़ हैं और आराध्य हैं :

नानक तिन कै सद बलिहारी जिन एक सबदि लिव लाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰879)

अंतर के बाजे :

प्रभु का मूल स्वरूप 'शब्द' का सिद्धांत है, और उस के दर पर हर समय ही अनंत प्रकार की धुनें बजती रहती हैं।

भाग सुलखणा हरि कंतु हमारा राम।।
अनहद बाजित्रा तिसु धुनि दरबारा राम।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰846)

'शब्द' के द्वारा ही सृष्टि की रचना हुई, जिसमें अनेकों खंड–मंडल मौजूद हैं। प्रत्येक खंड की अपनी–अपनी विशेष धुनें हैं, जो कि एक मंडल से दूसरे मंडल में जाने पर सुनाई पड़ती हैं। सभी संतों ने इन 'शब्दों' की

व्याख्या की है, और ख़ास कर गुरुवाणी में इस विषय का विस्तृत वर्णन मिलता है।

हम जानते हैं कि जब हिंदू लोग मंदिरों में जाते हैं, तो वे उनके मुख्यद्वार पर लगे बड़े घंटों को बजाते हैं। ईसाई गिरजों में भी सदैव एक घंटागार होता है, जिसे प्रार्थना से पूर्व घंटी बजाने वाला खींचकर बजाता है। प्राचीन गुरुद्वारों में शंख बजाया जाता था या फिर घंटा, लेकिन आजकल नगाड़ा बजाया जाता है। इस विषय पर बारीक़ी से अन्वेषण करने पर पता चलता है कि ये सभी बाहरी वाद्यध्वनियाँ– जैसे कि घंटी, घंटा, शंख इत्यादि– आंतरिक 'शब्द' की ही बाहरी निशानियाँ हैं। इसके अलावा, इन सभी पूजा स्थलों के ढाँचे का अध्ययन करने पर हम जान जाएँगे कि इनकी रचना के पीछे एक महत्त्वपूर्ण धामृक सच्चाई छुपी है। हिंदू मंदिरों की आकृति गुम्बददार है, जिसके गुम्बद के बीच में एक बड़ा घंटा होता है और जो कोई भी पूजा के लिये वहाँ जाता है, वह पहले घंटा बजाता है। मानव शरीर के मंदिर में भी, सिर के गुम्बददार ढाँचे के अंदर, जब आत्मा प्रवेश करती है और सूक्ष्म मंडल में पहुँचती है, तो उसे घड़ियाल या शंख जैसी आवाज़ सुनाई देती है। इसी प्रकार, ईसाई महागिरजे भी बड़े गुम्बददार होते हैं– जैसे कि इंसान का सिर, या फिर मीनार के जैसे होते हैं, जैसे कि चढ़ती हुई इंसान की नाक, जहाँ जब आत्मा सिमटकर अपने ठिकाने पर, दो भौंहों के बीच और पीछे आती है, तो उसे घंटे जैसी आवाज़ सुनाई पड़ती है। ख़्वाजा हाफ़िज़, जो एक मशहूर सूफ़ी संत हुए हैं, इसके बारे में बताते हैं :

कस न दानिस्त कि मंज़ल गहे–मअशूक़ कुजास्त,
ईं क़दर हस्त कि बांगे–जरस मी आयद।

– दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.200)

(यह कोई नहीं जानता कि मेरा प्रियतम कहाँ रहता है, मगर यक़ीनन वहाँ से घंटे की आवाज़ आती रहती है।)

सिक्ख धर्मग्रथों में कहा गया है :

घंटा जा का सुनीऐ चहु कुंट।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰393)

बौद्ध मठ भी मेहराब की शक्ल के होते हैं और हमेशा उनके दरवाज़े पर बायें, दायें– दोनों तरफ़ दो ढोल रखे होते हैं। सभी धर्मों के धर्मग्रंथों में घंटियों, तुरही और शंख के बजने के संदर्भ मिलते हैं। इसका कारण यही है कि जब आत्मा शारीरिक चेतनता से ऊपर उठकर सर्वोच्च सत्ता [प्रभु] के मंदिर में प्रवेश करती है, जिसका मार्ग नाक की जड़ में, दोनों भवों के बीच से शुरू होता है, तो उसे सर्वप्रथम इन्हीं आवाज़ों का अनुभव होता है। इसी तरह से जैसे–जैसे आत्मा आंतरिक मार्ग पर तरक़्क़ी करती है, तो अनगिनत 'शब्द धुनें' रास्ते में उसका स्वागत करती हैं। परन्तु प्रायः 'पाँच शब्द' ही प्रधान माने जाते हैं, जो कि परमात्मा को जाने वाले मार्ग पर रूह का मार्गदर्शन करते हैं। किसी संत–सत्गुरु की सहायता व मार्गदर्शन मिल जाने पर, ये मधुर धुनें अदल–बदल कर आत्मा को एक मंडल से दूसरे मंडल में ले जाती हैं, जब तक कि आत्मा स्वदेश के 'शब्द' को पकड़कर अपने परमपिता के घर नहीं पहुँच जाती।

भाई गुरदास जी की वारों में इन बाजों के कई संदर्भ मिलते हैं :

1. *सिंङी सुरति विशेष शब्द वजाइआ।।* – वारां (20, पौड़ी 11)
2. *वज्जन अनहद तूर जोति जगावणा।।*– वारां (23, पौड़ी 13)
3. *सहज समाध उनमन लिव लाई है।।* – कबित्त (336)
   अनहद धुनि रुनझुण सुरति स्रोत है। – कबित्त (172)

हाफ़िज़ फ़रमाते हैं :

बिशनौ कि मुतरबाने–चमन रास्त करदा अन्द,
आहंग–चंग ओ बरबता ओ तम्बूर ओ नाए ओ नै।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.406)

(स्वर्ग के वाद्य–वृंद को सुनो, जिसमें आहंग, चंग, बरबता, तम्बूरे आदि के स्वर उभर रहे हैं।)

ये आंतरिक बाजों की धुनें, जिनका सम्पर्क गुरु से पाया जा सकता है, आत्मा को सीमितता बंधनों से आज़ाद कराने में मददगार होती हैं और उसे परम पिता के सर्वोच्च घर यानी प्रभु की बादशाहत में ले जाती हैं और वहाँ पहुँचने का यही एकमात्र महामार्ग है।

बाहर के बाजे :

हम रोज़ाना के जीवन में देखते हैं कि संगीत का– चाहे वह वाद्ययंत्रों से निकला हो या फिर गले से– हर प्रकार की धामृक सभाओं में बड़ा महत्त्व है– चाहे वह सभा योगियों की हो, हिन्दुओं की हो, ईसाइयों की हो या फिर सिक्खों की। मुसलमानों में क़व्वाली का प्रचलन है, चाहे वह उमर ख़य्याम की रूबाइयों पर आधारित हो या शाह नियाज़, ख़्वाजा हाफ़िज़, शम्स तबरेज़ और मौलाना रूमी की काव्य–रचनाओं पर। बृहदाकार गुरु ग्रंथ साहिब में सिक्ख गुरुओं की तमाम शिक्षाएँ, भिन्न–भिन्न रागों पर ही संकलित हैं। सच्चाई तो यह है कि असंख्य पुकार आत्मा की गहराइयों से उभर कर निकलती रहती हैं। कविता वास्तव में आत्मा की भाषा है, जैसे कि गद्य बुद्धि की भाषा है। बाहरी संगीत के ये सभी रूप किसी व्यक्ति को थोड़ी देर के लिये नशे की हालत (मस्ती) में पहुँचा सकते हैं, परन्तु ये उसे परा–चेतनता की अवस्था में नहीं ले जा सकते, जो धीरे–धीरे फैल कर ब्रह्मांडीय जागृति तथा अंतरिक्षीय चेतनता बन सके।

निरति करे बहु वाजे वजाए।।
इहु मनु अंधा बोला है किसु आखि सुणाए।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰364)

इस प्रभावविहीनता के कई कारण हैं। पहली बात यह है कि बाहरी संगीत प्रायः आत्मा की गहराइयों से निकला हुआ नहीं होता। यह एक सस्ता माल है और केवल जीवनयापन का साधन।

घूंघर बाधि भए रामदासा रोटीअन के ओपावा।।
बरत नेम करम खट कीने बाहरि भेख दिखावा।।
गीत नाद मुखि राग अलापे मनि नही हरि हरि गावा।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1003)

जब पेट में चूहे कूद रहे हों, तो भला कोई अपनी शंका व संशय की अवस्था को पार करके भला कैसे ऊपर आ सकता है? फलस्वरूप, वह 'सत्' से बहुत दूर, अँधकार में ही रह जाता है।

दूसरी बात यह है कि अधिकतर संगीतकार अपना तमाम समय और शक्ति अपने बाजों या अपने गले के स्वरों को साधने में ही लगा देते हैं।

कुछ व्यवसायी रागियों (गायकों) के बारे में खोजबीन करने से पता लगा है कि वे लगातार ही इस भय में रहते हैं कि उन्हें प्रसिद्धि देने वाले उनके स्वर और तान उनसे कहीं छिन न जायें और इस तरह से वे क़ाबलियत को दिखाने में ही रह जाते हैं। क्योंकि उनका ध्यान लगातार ही अपने स्वरों व रागों पर होता है, इसलिए वे असली अर्थ को जाने बग़ैर ही वाणी को गाते रहते हैं और न केवल उसके असली अभिप्राय से बेख़बर रहते हैं, बल्कि कई बार ऐसी स्वरात्मक ग़लतियाँ भी कर बैठते हैं कि 'वाणी' का असली भावार्थ उलट–पुलट या नष्ट हो जाता है।

हथि करि तंतु वजावै जोगी थोथर वाजै बेन।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰368)

श्रोतागण भी उस 'वाणी' को ठीक से नहीं समझ पाते; जब तक कि उन्हें पहले से ही उसकी कुछ जानकारी नहीं हो, वे सहवाद्यों के स्वरों और धुनों में ही खो जाते हैं। संतों ने इसीलिये बाहरी संगीत को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया है, क्योंकि यह वास्तव में ध्यान को एकाग्र करने में सहायक नहीं होता। परिणामस्वरूप, साधक अपने अंदर 'सत्' का अनुभव नहीं पा सकता, अहम्पने को भूल नहीं पाता, जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर नहीं उठ सकता और आंतरिक शांति और निजानंद नहीं पा सकता।

इतु किंगुरी धिआनु न लागै जोगी ना सचु पलै पाइ।।
इतु किंगुरी सांति न आवै जोगी अभिमानु न विचहु जाइ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰908)

जो समय स्वरों को साधने और बाजों की तालों को ठीक करने में लगाया जाता है, वह निरर्थक ही जाता है। यदि यही समय, सत्गुरु की हिदायत के अनुसार, अपनी आत्मा को आंतरिक 'शब्द' के साथ जोड़ने में लगाया जाए, तो साधक को रूहानियत के अवर्णनीय ख़ज़ाने मिल सकते हैं।

कब को भालै घुंघरू ताला कब को बजावै रबाबु।।
आवत जात बार खिनु लागै हउ तब लगु समारउ नामु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰368)

संगीत के स्वरों के साथ भावोत्तेजित होकर गाना, नाचना और अपने को इतना थकाना कि साँस भी उखड़ जाये और फिर बेहोश होकर गिर

पड़ना— ये सब बातें किसी फ़ायदे की नहीं। इसमें कोई शक़ नहीं कि बाहर का संगीत फैली हुई सुरत की धराओं को इकट्ठा करने में अस्थायी रूप से मदद करता है, लेकिन यह हमें उच्चतर चेतनता की ओर नहीं ले जा सकता। उल्टे, इससे व्यक्ति अपने आप को और परमात्मा को भी भूल बैठता है। जर्मनी के संसार प्रसिद्ध संगीतज्ञ, बीटोवन हमें बतलाते हैं कि संगीत आध्यात्मिक और विषयजनित (इंद्रियों के घाट की) जीवन के बीच मध्यस्थता करता है। संगीत सुनते समय ऐसा लगता है कि हम एक नई ख़्याली दुनिया में प्रवेश कर गये हैं, जिसको वास्तव में संगीत बजाने वाला उत्पन्न करता है, परन्तु इससे मन की आंतरिक लालसाएँ, जो संसार और सांसारिक वस्तुओं को पाने की होती हैं, समाप्त नहीं होतीं। संक्षेप में, संत–महात्माओं की शिक्षाएँ इस मामले में बड़ी स्पष्ट हैं। हम बाहरी संगीत से आकर्षित हो सकते हैं, उसमें गुम हो जा सकते हैं और हम सभी उसका पूरा आनंद भी उठा सकते हैं, पर इसके द्वारा हम तीन गुणों के चंगुल से बाहर नहीं निकल सकते और परलोक में दाख़िल नहीं हो सकते। आत्मा के सच्चे संगीत ('शब्द') के बग़ैर, जो कि हर जगह और हर समय बज रहा है, व्यक्ति सदा ही मन–माया के दुखों और मुसीबतों का शिकार रहता है।

वादु पड़ै रागी जगु भीजै।।
त्रै गुण बिखिआ जनमि मरीजै।।
राम नाम बिनु दूखु सहीजै।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰905)

माइआ लहरि सबदि निवारी।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1049)

संतों ने इसीलिये कभी कोई अन्य साधन– जैसे कि संगीत, योग आसन आदि का अभ्यास या कोई अन्य, नहीं सुझाया। उन्होंने सदा ही केवल 'नाम' या 'शब्द' से प्रीत करने पर ज़ोर दिया है, जो प्रभुसत्ता की मूल अभिव्यक्ति है।

किनही घूघर निरति कराई।।
किनहू वरत नेम माला पाई।।

किनही तिलकु गोपी चंदन लाइआ।।
मोहि दीन हरि हरि हरि धिआइआ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰913)

मुस्लिम फ़क़ीरों ने भी सभी क़िस्म के बाहरी रागों को छोड़कर 'कलामे–क़दीम' (ख़ुदा का अत्यंत प्राचीन आंतरिक 'शब्द') के अभ्यास पर ज़ोर दिया है।

पंबा–ए वसवास बेरूं कुन ज़ गोश,
तां बगोशत आयद अज़ गरदूं ख़रोश।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.170)

(वहम और अविश्वास की गट्टकों को कानों में से निकाल दो और जो संगीत आसमानों से आ रहा है, उसे सुनो।)

चर्ख़ रा दरे ज़ेरे–पा आर ऐ शुजाअ,
बिशनौ अज़ फ़ौके–फ़लक बांगे–समाअ।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.190) ।

(हे बहादुर आत्मा! इंद्रियों के मंडल से ऊपर उठ और स्वर्ग के संगीत को सुन।)

हैफ़ दर बंदे–जिस्म दरमानी,
नशनवी सौते–पाके–रहमानी।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

(जिस्म की क़ैद में बंधे रहना और पूर्ण कृपालु प्रभु की आवाज़ को नहीं सुनना— कितने अफ़सोस और दुख की बात है!)

भाई गुरदास अपने कबित्त–सवैये में हमें बतलाते हैं कि 'नाद बाद' (बाहरी राग–रागिनी) के द्वारा साधक सच्ची और अनहद 'शब्द धुनों' को नहीं पा सकता :

जउ लउ नाद बाद न अनाहद बिसेखीऐ।।

— कबित्त–सवैये (12)

राग–रागिनियाँ बाहिरी इंद्रियों को उत्तेजित करती हैं, और जो व्यक्ति उन्हीं में लगा रहता है, वह तमाम जीवन भर फँसा रह जाता है, ठीक उसी तरह, जैसे एक भारी–भरकम हाथी या तेज़ चाल वाला हिरण, जो अपनी

अज्ञानता के कारण शिकारी की चालों में फँसकर आसानी से पकड़े जाते हैं :

जउपै नाद बाद सुनि मृग आन गिआन राचै।।
प्रान सुख हुइ सबद बेधी न कहावई।।

– कबित्त–सवैये (412)

'नाद–बाद' (नाद–वाद्य) से बहुत परे 'अनाहत–शब्द' है, जो स्वयं आश्रित होता है।

नाद बाद परै अनहत लिव लावई।।

– कबित्त–सवैये (11)

'अनहद–शब्द' से जुड़कर ही हम तीन गुणों से ऊपर उठ सकते हैं। प्रभु का यह संगीत हमें दुनियावी बंधनों से मुक्त होने में मदद करता है और हम दुनिया में रहते हुए भी, दुनिया के नहीं रहते। इसके बाद हम कमल के फूल की भाँति, माया की कीचड़ से, जहाँ हमारा प्राकृतिक आवास है, ऊपर उठे रहते हैं और मुर्गाबी की भाँति, संसार–सागर में रहते हुए भी, जब चाहें, सूखे परों से आसमान में उड़ जाते हैं।

सिक्ख धर्मग्रंथों में 'नाद–बाद' को अक्सर 'बिख बैणी' या 'बिख नाद' कहा गया है, जिसका मतलब है, ऐसा नाद या स्वर या संगीत, जिसके अंदर घातक ज़हर हो, क्योंकि इससे ऐसा ज़हर चढ़ता है, जिससे बचने का कोई रास्ता नहीं :

कालु जालु जिहवा अरु नैणी।।
कानी कालु सुणै बिखु बैणी।।
बिनु सबदै मूठे दिनु रैणी।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰1, पृ॰227)

बिखै नाद करन सुणि भीना।।
हरि जसु सुनत आलसु मनि कीना।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰738)

प्रभु की दरगाह में इज़्ज़त पाने के लिये हमें 'नाद–बाद' को छोड़कर 'हरि का संगीत' सुनना होगा :

राग नाद छोडि हरि सेवीऐ ता दरगह पाईऐ मानु।।

नानक गुरमुखि ब्रहमु बीचारीऐ चूकै मनि अभिमानु।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल की वार म॰4, पृ॰849)

दुनियावी लोग सदा 'नाद–बाद' में फँसे रहते हैं, जो कि सिर्फ़ माया का शोर है :

किआ मानुख कहहु किआ जोरु।।
झूठा माइआ का सभु सोरु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰178)

सत्गुरुओं का मार्ग वहाँ से शुरू होता है, जहाँ तमाम राग और रागिनियाँ समाप्त हो जाती हैं और व्यक्ति इंद्रियों के घाट को पार कर जाता है, जिसके परे 'अनाहत–शब्द', बिना रुके अपने आप बजता रहता है। जो कोई इस 'धुनात्मक–शब्द' से जुड़ता है, वह जितना चाहेगा, गा सकता है और उसी का गायन सफल है :

जिस नो परतीति होवै तिस का गाविआ
थाइ पवै सो पावै दरगह मानु।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰734)

'शब्द' से जुड़कर ही व्यक्ति भ्रमित करने वाले मायावी पदार्थ के भवसागर से बच निकल सकता है। बाहरी संगीतों के स्वर– चाहे वे कैसे भी क्यों न हों, अधिक मददगार नहीं :

मनूआ नाचै भगति दृडाए।। गुर कै सबदि मनै मनु मिलाए।।
सचा तालु पूरे माइआ मोहु चुकाए सबदे निरति करावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰121)

गावहि गीते चीति अनीते।।
राग सुणाइ कहावहि बीते।।
बिनु नावै मनि झूठु अनीते।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰414)

आत्मा का आंतरिक संगीत ही सच्चा संगीत है, क्योंकि इसकी धुनें आत्म–निर्भर और स्वयं–आश्रित हैं और उन्हें किसी बाहरी सहारे– हाथ, पैर, ज़ुबान आदि की ज़रूरत नहीं और वो हमें अपने स्त्रोत यानी दिव्य संगीतकार (प्रभु) तक ले जाती हैं :

कर बिनु वाजा पग बिनु ताला।।
जे सबदु बुझै ता सचु निहाला।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰412)

'दिव्य–शब्द' की धुनें सिर्फ़ एक सच्चे गुरुमुख को सुनाई देती हैं; ऐसे एक महात्मा की कृपा से बहुतों का उद्धार होता है :

तेरा जनु निरति करे गुन गावै।।
रबाबु पखावज ताल घुंघरू अनहद सबदु वजावै।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰381)

कर संगि साधू चरन पखारै संत धूरि तनि लावै।।
मनु तनु अरपि धरे गुर आगै सति पदारथु पावै।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰381)

जो जो सुनै पेखै लाइ सरधा ता का जनम मरन दुखु भागै।।
ऐसी निरति नरक निवारै नानक गुरमुखि जागै।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰381)

योगिजन और दरवेश आंतरिक 'शब्द' के श्रवण के विकास के लिए बाहरी संगीत की मदद लेते हैं।

ख़ास करके सूफ़ी संगीत को ईश्वरीय या दैवी कला कहते हैं, सिर्फ़ इसलिये नहीं कि इसका धर्म और भक्ति में प्रयोग होता है और यह अपने आप में एक विश्वव्यापी धर्म है, लेकिन इसलिये कि ये अन्य कलाओं और विज्ञानों की तुलना में बहुत उत्तम व सूक्ष्म कला है। प्रत्येक पवित्र धर्मग्रंथ, पवित्र तस्वीर या बोले हुए 'शब्द' अपना असर उत्पन्न करते हैं और शीशे में परछाईं की माफ़िक, आत्मा पर अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं। परन्तु संगीत आत्मा के सामने किसी दुनियावी वस्तु का प्रभाव नहीं छोड़ता, बल्कि स्वयं स्पष्ट रूप से स्थित रहता है, इस तरह से वह आत्मा को तैयार करता है कि वह असीम परमात्मा का अनुभव कर सकें.....

संगीत के महत्व को पहचानते हुए, सूफ़ी-संत इसे 'ग़िज़ाए-रूह' ('आत्मा का भोजन') कहते हैं और

आध्यात्मिक परिपूर्णता पाने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। क्योंकि संगीत, दिल की आग (लगन) को हवा देता है, उसे भड़काता है, और उससे निकली लपटें आत्मा को रोशन करती हैं। योगी और साधु लोग 'नरसिंघा' (भोंपुओं से लैस एक वाद्ययंत्र) या शंख बजाते हैं, ताकि उनके अंदर आंतरिक स्वरनाद जागृत हो सके। दरवेश भी 'नय' या 'अलगोज़ा' (एक तरह की बाँसुरी) इसी लिये बजाते हैं। गिरजों और मंदिरों में बजते 'घंटे' और 'घंटियाँ' भी इसी पवित्र नादध्वनि के द्योतक हैं और जिज्ञासु को आंतरिक जीवन की ओर खींचते हैं।

– हज़रत इनायत ख़ाँ

यदि संगीत को 'कलाओं की कला' और 'विज्ञानों का विज्ञान' मान लिया जाये, सभी ज्ञानों का स्त्रोत समझ लिया जाए, तो इसकी मदद से सुनने की सूक्ष्म श्रवण इंद्री का विकास होता है, लेकिन यदि इसका प्रयोग दिखावे या नुमाइश के लिए किया जाए या फिर आजीविका कमाने के साधन के रूप में, तो इसका अपना स्वाभाविक आकर्षण और असली लाभ नष्ट हो जाता है।

कभी–कभी संत–महात्मा श्रोतागणों को इकट्ठा करने के लिए भी संगीत का प्रयोग करते हैं, क्योंकि ज़्यादातर लोग अन्य किसी साधन की बजाय, संगीत से ज़्यादा खिंचे चले आते हैं।

और फिर, इंसान वही बोलता है, जो उसके दिल में होता है। क्योंकि सच्चे संत 'अनाहत नाद' के नशे से लबालब भरे होते हैं, इसलिए जो स्वर उनकी आत्माओं की गहराइयों से निकलते हैं, उनका श्रोताओं पर बड़ा भारी असर होता है और कभी–कभी उनके व्यक्तित्व में अचानक बड़ा भारी परिवर्तन आ जाता है और वे (श्रोतागण) तत्काल आध्यात्मिक रूप से पूरी तरह खिल उठते हैं।

पुरातन रीति–रिवाज़ों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि पुराने ज़माने में दिव्य संदेश भी गीतों के रूप में दिए जाते थे– जैसे बाइबिल के 'श्रेष्ठ गीत' *('Songs of Solomon')* और 'दाऊद के भजन' *('Psalms of David')*, 'ज़रतुश्तु की गाथा' *('The Gathas of Zoroaster')*। वेद,

पुराण, रामायण, महाभारत, ज़ेंद अवेस्ता, कबाला और सिक्ख धर्मग्रंथ, तमाम कविता के रूप में लिखे गए हैं। कबीर, नानक, बाबा फ़रीद, हज़रत बाहु, सूरदास, धर्मदास, सदना और दूसरे संतों ने ज़्यादातर कविता के रूप में ही अपने विचारों का प्रचार–प्रसार किया। संतों के चारों ओर का वातावरण भी आध्यात्मिक तरंगों से भरा होता है और प्रायः कुछ पक्के भक्त उन संतों के दर्शनमात्र से ही 'वज्द' या मस्ती की हालत में चले जाते हैं। बंगाल के एक संत, चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक धोबी को कहे गए दो साधारण शब्दों,'हरि बोल' से तमाम धोबी घाट ही नाचने वाले लोगों की टोली में बदल गया और सभी 'हरि बोल', 'हरि बोल' का जाप करने लगे। तो यह है उस असली संगीत की ताक़त, जो दिल की गहराइयों से निकलता है।

अध्याय

: **7** :

अमृत

अमृत या 'आबे–हयात' या 'महारस' 'जीवन का अमृत' है, क्योंकि जो कोई इसे पीता है, वह हमेशा के जीवन को पा जाता है और साधारणतया अंतहीन आवागमन के चक्र से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। ऋषियों और मुनियों ने इसकी तलाश में बड़े–बड़े धक्के खाये, लेकिन इतनी बड़ी दुनिया में उन्हें यह कहीं भी न मिल सका। तो क्या यह एक छलावा या मरु–मरीचिका ही है? इसके जवाब में संतों ने बारंबार यह कहा है कि 'अमृत' एक ठोस असलियत है। यह अमर कर देने वाला 'जीवन–जल' है, जो आत्मा की गहराइयों में छिपा और दबा पड़ा रहता है और जिस पर युगों–युगों से धूल की परतें चढ़ी हुई है। यदि व्यक्ति धैर्य के साथ बताए गए मार्ग पर चलता रहे, इसको अब भी उन गहराइयों में से फिर से निकाला जा सकता है।

विभिन्न धर्मों के धर्मग्रन्थों में हमें 'पवित्र जीवनदायी जल' के संदर्भ मिलते हैं। मुस्लिम दरवेश इसे 'आबे–हयात' या 'आबे–हैवाँ' कहते हैं और दुनिया से दुखी तीर्थयात्रियों को इसके उपयोग का सुझाव देते हैं। इसे 'चश्मा–ए–क़ौसर' भी कहा जाता है। हिंदू धर्मग्रन्थ इसे 'मानसरोवर' या 'अमृत का सरोवर' ('अमृतसर') कहते हैं, जिसको चख लेने से सदा का जीवन मिल जाता है। वेदों में हमें 'सोमरस' का उल्लेख मिलता है, जिसके द्वारा पुरातन मुनियों–ऋषियों को ब्रह्मांडीय जागृति या वैश्विक चेतना प्राप्त हुई। संत प्रायः इसे 'अमृतसर' या 'अमृत का सोमा' कहते हैं। ईसा मसीह अक्सर इसे 'ज़िंदगी का पानी' ('Water of Life') कहते थे।

और जो प्यासा है, वह आये और जो भी चाहे, वो खुले दिल से ज़िंदगी का जल ले ले।

– पवित्र बाइबिल (रहस्योद्घाटन 22:7)

जो कोई वह जल पियेगा, जो मैं उसे दूँगा, वह कभी प्यासा नहीं रहेगा; वरन् जो जल मैं उसे दूँगा, वह उसके अंदर जाकर पानी का एक स्रोत बन जायेगा, जो कि अनन्त जीवन प्रदान करेगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 4:14)

पवित्र बाइबिल में यह कहा गया है कि ईसा मसीह मुर्दों को ज़िंदा कर दिया करते थे। एक स्थान पर बताया गया है कि एक समारी औरत को उन्होंने यह 'ज़िंदगी का जल' दिया। इन तमाम बयानात से ये साफ़ है कि ईसा मसीह ने इस 'ज़िंदगी के पानी' का मानवता के रोगों का इलाज करने के लिए खुलकर प्रयोग किया। उन्होंने अक्सर 'प्रभु की आवाज़' का भी ज़िक्र किया है।

तुरही बजेगी और मुर्दे अविनाशी दशा में उठ खड़े होंगे और हम तब्दील हो जायेंगे।

– पवित्र बाइबिल (I कुरिन्थियों 13:52)

जब मुर्दे भी परमात्मा के बेटे की आवाज़ को सुनेंगे; और जो सुनेंगे, वे जियेंगे।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 5:25)

कहा जाता है कि इन तरीक़ों के द्वारा उन्होंने कम से कम एक लाख चवालीस हज़ार आत्माओं को मुक्ति प्रदान की। – पवित्र बाइबिल (रहस्योद्घाटन 14:3)

पुरातन ऋषियों–मुनियों एवं पुराने और आधुनिक संतों ने भी 'ज़िंदगी का पानी' पिया और अपने शिष्यों को इसे पिलाया और आज भी यह संभव है कि किसी संत–सत्गुरु की कृपा द्वारा हम भी इस अमृतरस का पान कर सकें।

'अमृत' यह क्या है? :

धर्मग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से हमें यह पता चलता है कि 'ज़िंदगी का पानी' या 'अमृत' कुछ और नहीं, बल्कि ईसा मसीह का 'वर्ड' ('Word') या 'लोगॉस' ('Logos') है, संतों का 'नाम' या 'शब्द' है, मुसलमानों का 'कलमा' है और वैदिक ऋषियों का 'नाद' है।

अंमृतु साचा नामु है कहणा कछू न जाइ।।
पीवत हू परवाणु भइआ पूरै सबदि समाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰33)

अंमृतु हरि हरि नामु है मेरी जिंदुडीए अंमृतु गुरमति पाए राम।।

— आदि ग्रंथ (बिहागड़ा म॰4, पृ॰538)

हरि का नामु अंमृत जलु निरमलु इहु अउखधु जगि सारा।।
गुर परसादि कहै जनु भीखनु पावउ मोख दुआरा।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ भगत भीखन, पृ॰659)

अंमृतु नामु निधानु है मिलि पीवहु भाई।।
जिसु सिमरत सुखु पाईऐ सभ तिखा बुझाई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी की वार म॰5, पृ॰318)

सत्गुरु की सेवा करने से 'अमृत' प्रकट हो जाता है।

अंमृतु एको सबदु है नानक गुरमुखि पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰644)

अंमृतु वरखै अनहद बाणी।। मन तन अंतरि सांति समाणी।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰105)

हउ वारी जीउ वारी अंमृत बाणी मंनि वसावणिआ।।
अंमृत बाणी मंनि वसाए अंमृतु नामु धिआवणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰118)

अजब कंम करते हरि केरे।। इहु मनु भूला जाँदा फेरे।।
अंमृत बाणी सिउ चितु लाए अंमृत सबदि वजावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰118)

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहि।।
नानक अंमृतु एकु है दूजा अंमृतु नाहि।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1238)

अंमृतु हरि का नामु है जितु पीतै तिख जाइ।।
नानक गुरमुखि जिन्ह पीआ तिन्ह बहुड़ि न लागी आइ।।

— आदि ग्रंथ (मलार की वार म॰3, पृ॰1283)

नाम रतन को को बिउहारी।। अंमृत भोजनु करे आहारी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰181)

गुर का सबदु महा रसु मीठा।। ऐसा अंमृतु अंतरि डीठा।।
जिनि चाखिआ पूरा पदु होइ।। नानक ध्रापिओ तनि सुखु होइ।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰1, पृ॰1331)

'अमृत' का प्रयोग प्रायः हरि, हरि–कीर्तन और महारस के लिये किया जाता है। सिर्फ़ वही इच्छाओं से मुक्ति पाता है, जो 'शब्द' में तल्लीन रहता है। 'जीवन के वृक्ष' का फल [अमृत–फल] हरि ही है और यह प्रभु की भेंट है।

बिखिआ रंग कूडाविआ दिसनि सभे छारु।।
हरि अंमृत बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰134)

हरि हरि नामु अंमृतु है हरि जपीऐ सतिगुर भाइ।।
हरि हरि नामु पवितु है हरि जपत सुनत दुखु जाइ।।

— आदि ग्रंथ (कानड़े की वार म॰4, पृ॰1316)

अंमृत रसु हरि कीरतनो को विरला पीवै।।
वजहु नानक मिलै एकु नामु रिद जपि जपि जीवै।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰400)

हउ वारी जीउ वारी अंमृत नामु मंनि वसावणिआ।।
अंमृत नामु महा रसु मीठा गुरमती अंमृतु पीआवणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰124)

धर्मग्रंथ हमें बताते हैं कि जिसे हम 'अमृत' या 'ज़िंदगी का जल' कहते हैं, यह वही है, जिसे 'नाम' या 'वर्ड' भी कहा जाता है। इस रूहानी शराब के मात्र स्पर्श से ही प्रभु का नशा चढ़ने लगता है।

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहि।।
नानक अंमृतु एकु है दूजा अंमृतु नाहि।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1238)

इस कलियुग में 'अमृत' के नशे के अलावा दूसरा कोई नशा नहीं है।

हरि का नामु अंमृतु कलि माहि।। एहु निधाना साधू पाहि।।
— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰888)

'अमृत' में ध्वनि है :

'अमृत' प्रभु का संगीत है, और हर जगह, हर समय, उसकी संगीतमय धुनकारें उठ रही हैं। यह 'जीवन की रोटी' ('मन्ना' या 'दिव्य–अन्न') है, जिस पर आत्मा पलती है और पोषित होती है।

धावतु थंम्हिआ सतिगुरि मिलिऐ दसवा दुआरु पाइआ।।
तिथै अंमृत भोजनु सहज धुनि उपजै जितु सबदि जगतु थंम्हि रहाइआ।।
तह अनेक वाजे सदा अनदु है सचे रहिआ समाए।।
इउ कहै नानकु सतिगुरि मिलिऐ धावतु थंम्हिआ निज घरि वसिआ आए।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰441)

साधु मिलै साधू जनै संतोखु वसै गुर भाइ।।
अकथ कथा वीचारीऐ जे सतिगुर माहि समाइ।।
पी अंमृतु संतोखिआ दरगहि पैधा जाइ।।
घटि घटि वाजै किंगुरी अनदिनु सबदि सुभाइ।।
विरले कउ सोझी पई गुरमुखि मनु समझाइ।।
— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰62)

अमृत में ज्योति है :

दो आँखों के बीच में और थोड़ा पीछे जो 'दिव्य चक्षु' है, जब उसके द्वारा आंतरिक गगन में टकटकी लगाकर देखा जाता है, तो वह धीरे–धीरे उजियाले से भर जाता है। पहले उस में बिजली कौंधती हुई मालूम देती है और समय गुज़रने के साथ–साथ, उसमें तारों भरा आकाश प्रकट होता है और सूर्य और चन्द्रमा तथा कई अन्य ज्योतिर्मय दृष्य नज़र आते हैं। जब आत्मा इन सभी को पार कर जाती है और सूक्ष्म मंडल के मुख्यालय, त्रिकुटी में दाख़िल होती है, तो वहाँ उसे ब्रह्मांड का सूर्य, और ब्रह्मांड के पार, पार–ब्रह्म का चाँद नज़र आता है। हमें उच्चतर आत्मिक मंडलों के अनेक संदर्भ संत तुलसी साहिब और दूसरे संतों की वाणियों में मिलते हैं।

हरि अंमृत कथा सरेसट ऊतम गुर बचनी सहजे चाखी।।
तह भइआ प्रगासु मिटिआ अंधिआरा जिउ सूरज रैणि किराखी।।
अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु सो देखिआ गुरमुखि आखी।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग की वार म॰4, पृ॰87)

अंमृत बाणी गुर की मीठी।। गुरमुखि विरलै किनै चखि डीठी।।
अंतरि परगासु महा रसु पीवै दरि सचै सबदु वजावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰113)

निरमल जोति अंमृतु हरि नाम।। पीवत अमर भए निहकाम।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰886)

वह प्रभु ही है, जिसने अंधकार के बीच में ज्योति को प्रज्ज्वलित होने की आज्ञा दी, हमारे हृदयों में उस ज्योति को जगाया, चमकाया; और उसी ने ईसा मसीह के चेहरे पर स्वयं की महिमा और शान के नूर को प्रकट किया।

— पवित्र बाइबिल (II कुरिन्थियों 4:6)

आपका शब्द मेरे क़दमों के लिए दीपक और मेरे रास्ते के लिए उजियाला है।

— पवित्र बाइबिल (भजन संहिता 119:105)

'अमृत' का स्थान :

इस 'दिव्य अमृत' को अंतर्मुख होकर ही पाया जा सकता है और यह बाहरी संसार में कहीं भी नहीं मिलता। हम इसे तभी पाते हैं, जब हम स्थूल शरीर से ऊपर उठकर आत्मिक मंडलों में प्रवेश करते हैं। किसी को अमर जीवन देने के लिये 'जीवनदायी जल' की एक घूँट ही पर्याप्त है। 'हौज़े–क़ौसर' या 'अमृत सरोवर' तक पहुँचने के लिए व्यक्ति को अपने अंतर में ही खोज करनी पड़ती है।

इंसान का शरीर ही प्रभु का हरिमंदिर है, जहाँ आत्मा और परमात्मा, दोनों ही निवास करते हैं। इस मंदिर में बहुत सारे उपकरण हैं, जिनके द्वारा अंदर बसने वाली आत्मा बाहर के स्थूल मंडल में काम करती है। इन उपकरणों की तुलना खिड़की और दरवाज़ों से की जा सकती है, जिनके

द्वारा आत्मा और मन सांसारिक आनंदों की प्राप्ति के लिए बाहर संसार में जाते हैं। लेकिन आत्मा ख़ुद इस शरीर में क़ैद है और इस क़ैद से बच निकलने का रास्ता इसे मालूम नहीं है। जिस्म में नौ दरवाज़े ऐसे हैं, जो बाहर से नज़र आते हैं– दो आँखें, दो कान, दो नासिका, मुँह, गुदा और जननेंद्रिय। जब तक आत्मा इंद्रियों के भोगों–रसों में तल्लीन रहती है, यह रूहानी मंडलों में नहीं जा सकती और इसलिए, 'जीवन के अमृत' को नहीं चख सकती। इन नौ दरवाज़ों के अलावा, एक फूट पड़ने वाला गुप्त दरवाज़ा और भी है, जो दो आँखों के बीच, पीछे की ओर है। जब आत्मा संकेन्द्रन द्वारा इस केंद्र पर एकत्र हो जाती है, तब यह इस योग्य हो जाती है कि उच्चतर मंडलों में जा सके, जहाँ पर सारी रूहानी बपौती छुपी है।

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई।।
कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवैं ततु समाई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी पूरबी भगत कबीर, पृ॰339)

नउ दरवाजे नवे दर फीके रसु अंमृतु दसवे चुईजै।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1323)

अंमृत रसु सतिगुरू चुआइआ।। दसवै दुआरि प्रगटु होई आइआ।।
तह अनहद सबद वजहि धुनि बाणी सहजे सहजि समाई हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰4, पृ॰1069)

बाहरि ढूढन ते छूटि परे गुरि घर ही माहि दिखाइआ था।।
अनहद सबदु दसम दुआरि वजिओ तह अंमृत नामु चुआइआ था।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1002)

दिव्य संगीत का 'अमृत' इंसानी शरीर में है और जो कोई इसे खोजता है, उसे यह अंतर में ही मिलता है। इंद्रियों के घाट पर हम जो भी कर्मकांड करते हैं– जैसे कि तीर्थ भ्रमण, व्रत, रीति–रिवाज़, मूर्ति पूजा आदि, उनसे इस 'अमृत' की प्रप्ति नहीं हो सकती। इस मार्ग पर पहले हमें अपने आप को खोना पड़ता है, और तभी हम फिर से अपने आप को जान पाते हैं।

जो कोई अपनी ज़िंदगी बचायेगा, वो उसे खो देगा; लेकिन जो कोई मेरे लिए अपनी ज़िंदगी खो देगा, उसकी ज़िंदगी बच जायेगी।

— पवित्र बाइबिल (लूका 9:24)

इसका मतलब यह है कि हम अमर ज़िंदगी तभी पा सकते हैं, जब हम स्वेच्छा से जीते–जी मरने की विद्या सीख कर उसका अभ्यास कर पायें। यही एक रास्ता है, जिससे अमर 'जीवन का जल' मिल सकता है, इसके सिवाय कोई और नहीं।

नउ निधि अंमृतु प्रभ का नामु।।
देही महि इस का बिस्रामु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰293)

जेते घट अंमृतु सभ ही महि भावै तिसहि पीआई।।

— आदि ग्रंथ (केदारा भगत कबीर, पृ॰1123)

अंतरि खूहटा अंमृति भरिआ सबदे काढि पीऐ पनिहारी।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰3, पृ॰570)

घर ही महि अंमृतु भरपूरु है मनमुखा सादु न पाइआ।।
जिउ कसतूरी मिरगु न जाणै भ्रमदा भरमि भुलाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰644)

एक सूफ़ी संत ने कहा है :

यार दर खाना ओ मन गिर्दे–जहाँ मीगरदम,
आब दर कूज़ा ओ मन तश्ना लबाँ मीगरदम।

(प्रियतम घर में ही बसता है, जबकि मैं इसे दुनिया में ढूंढता फिरता हूँ। एक स्वच्छ जल का स्रोत अपने भीतर होते हुए भी मैं प्यासा रह जाता हूँ।)

हमारे मस्तक के अंदर एक उल्टा कुआँ है, जो कि आँखों के पीछे खुलता है। उस कुएँ में से 'अमृत' की एक धारा निकल कर हमारे शरीर में आ रही है। लेकिन, बदकि़स्मत आत्मा हमेशा बाहरी दुनिया के कार्य–कल. ापों में फँसी रहती है और इसका 'अमृत' को पीने का नसीब नहीं है, और इसलिए यह सदा दुखी रहती है।

हर क़ीमती वस्तु हमारे इस जिस्म में ही है, बाहर कुछ भी नहीं। जिस किसी ने सत्गुरु की कृपा से इस ख़ज़ाने को अपने अंदर पाया है, वह सचमुच ही धन्य है और उसे अंतर और बाहर, दोनों जगह सच्ची ख़ुशी प्राप्त होती है। वह रिमझिम बरसती इस 'अमृत की धारा' को पीता है और हर समय एक दिव्य मस्ती में रहता है। लेकिन इस अमृत को पाने का तरीक़ा एक

पूरे संत–सत्गुरु से ही मिलता है, और तब आत्मा, जो सृष्टि के शुरूआत से अपने घर से बिछड़ी हुई है, एक बार फिर अपने कर्ता में मिल कर सदा की शांति और सरशारी पा जाती है।

सभ किछु घर महि बाहरि नाही। बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही।।
गुर परसादी जिनी अंतरि पाइआ सो अंतरि बाहरि सुहेला जीउ।।
झिमि झिमि वरसै अंमृत धारा।। मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा।।
अनद बिनोद करे दिन राती सदा सदा हरि केला जीउ।।
जनम जनम का विछुड़िआ मिलिआ।। साध कृपा ते सूका हरिआ।।
सुमति पाए नामु धिआए गुरमुखि होए मेला जीउ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰102)

'अमृत का मानसरोवर' हमारे मन की परतों के अंदर छुपा है, और यह मन के स्थिर होने पर ही यह प्रकट होता है। 'नाम' के साथ जुड़ने से अमर जीवन प्राप्त हो जाता है।

नानक अंमृतु मनै माहि पाईऐ गुर परसादि।।
तिन्ही पीता रंग सिउ जिन्ह कउ लिखिआ आदि।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰2, पृ॰1238)

जब मन सारी मलीन वासनाओं से मुक्त हो जाता है, तभी इंसान जीवनदायी 'अमृत' को पा सकता है।

गुरमती मनु निरमलु होआ अंमृतु ततु वखानै।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰3, पृ॰1334)

'अमृत' को कौन चख पाता है? :

महापुरुषों के लेखों से पता चलता है कि जब तक कोई जीते–जी मरना न सीख ले, तब तक इस 'अमृत' को नहीं चख सकता है। इसीलिये,

इंसान को आत्मा के लिए जिस्म का आकर्षण छोड़ना पड़ता है।

— थॉमस–आ–केम्पिस

क्योंकि,

जिस्म व लहू को प्रभु की बादशाहत नहीं मिल सकती।

– पवित्र बाइबिल (I कुरिन्थियों 15:50)

अगर कोई इंसान मेरे पीछे आना चाहे, तो वह अपने आप को नकारे और रोज़ाना सूली पर चढ़े और मेरा अनुकरण करे। क्योंकि जो कोई अपनी ज़िंदगी बचाएगा, वो उसे खो देगा। लेकिन जो कोई मेरे लिए अपना जीवन खो देगा, उसका जीवन बच जायेगा।

– पवित्र बाइबिल (लूका 9:23)

हम मात्र एक भौतिक जीवन जी रहे हैं। हम जानते हैं कि भौतिक (स्थूल) मंडल में कैसे जीना है, और ऐसा हम अपनी स्थूल इंद्रियों की मदद से कर पाते हैं। पर हम यह नहीं जानते कि इसके आगे भी कुछ और है तथा स्थूल इंद्रियों के अलावा हमारी सूक्ष्म और कारण इंद्रियाँ भी हैं, जिनका प्रयोग हम देहाभास से ऊपर उठने पर कर सकते हैं। इंसान में महान संभावनाएँ हैं, क्योंकि प्रभु ने उसे अपने प्रतिरूप में ही बनाया है। पर बड़े दुख की बात है कि हम मन और माया के भारी भँवर में फँस गए हैं, अंतर की जीवन धारा से टूट गए हैं और हमारी ज़िंदगी की नाव बिना सहारे के बही जा रही है। संत–सत्गुरु ही वह एकमात्र आश्रय है, जहाँ हम राहत पा सकते हैं और अपनी दुखभरी हालत पर सोच–विचार कर सकते हैं। यहाँ सत्गुरु किस प्रकार हमारी सहायता करते हैं? वे हमें बताते हैं कि कैसे हम आत्मा की धाराओं को उसके ठिकाने पर कैसे एकत्र कर इस जिस्म को छोड़ सकते हैं। इस प्रकार स्थूल शरीर से ऊपर उठने को 'जीते–जी मरना' कहते हैं, जो कि प्रभु के बादशाहत में प्रवेश पाने के द्वार को खोलने का मंत्र, 'खुल जा सिम–सिम' है।

बमीर ऐ दोस्त पेश अज़ मर्ग, अगर मी ज़िंदगी ख़्वाही।

– दीवाने–सनाई (पृ॰27)

(अगर तुम हमेशा की ज़िंदगी जीना चाहते हो, तो मरने से पहले मरो।)

जो जन मरि जीवे तिन्ह अंमृतु पीवे मनि लागा गुरमति भाउ जीउ।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰447)

जीते–जी मरना सीखो क्योंकि अंत में मौत सबको आती है।

– बाबा फ़रीद

मरना सीखो, ताकि तुम जीने लग जाओ।

— थॉमस–आ–केम्पिस

मनि नामु जपाना हरि हरि मनि भाना हरि भगत जना मनि चाउ जीउ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰447)

गुरि दीआ सचु अंमृतु पीवउ।। सहजि मरउ जीवत ही जीवउ।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म॰1, पृ॰1189)

रूहानियत प्रभु की एक मुफ़्त भेंट है, न कि हमारी क़ाबलियत का फल। यह किसी प्रभु–रूप हस्ती की कृपा से ही मिलती है। वह (गुरु) ही "सच है, वह ही मार्ग है और वह ही ज़िंदगी है।" सत्गुरु में लीन होने से ही हमें अंतर में 'अमृत का सरोवर' मिल सकता है, और इसी को दूसरा जन्म या पुनर्जीवन कहते हैं।

'अमृत' कैसे मिलता है? :

(क) **प्रभु की कृपा से :**

हरि हरि नामु अंमृतु है नदरी पाइआ जाइ।।
अनदिनु हरि हरि उचरै गुर कै सहजि सुभाइ।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰3, पृ॰1258)

सभु को बीजे आपणे भले नो हरि भावै सो खेतु जमाइआ।।
गुरसिखी हरि अंमृतु बीजिआ हरि अंमृत नामु फलु अंमृतु पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी की वार म॰4, पृ॰304)

(ख) **क़िस्मत से :**

यदि ऐसा धुर भाग्य में लिखा है, तो अपने अच्छे कर्मों से अंतर में 'अमृत' मिल सकता है।

जिसु धुरि भागु होवै मुखि मसतकि तिनि जनि लै हिरदै राखी।।
हरि अंमृत कथा सरेसट ऊतम गुर बचनी सहजे चाखी।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰4, पृ॰87)

(ग) **सत्गुरु की भक्ति द्वारा :**

'अमृत' हर जगह परिपूर्ण है, पर हम उसे इंद्रियों के घाट पर नहीं चख सकते।

हर जगह पानी ही पानी है, पर हम उसकी एक बूँद भी नहीं पी सकते।

'अमृत' को हर कोई पाना चाहता है, देवी–देवता भी इसे ढूँढते रहते हैं। परन्तु यह संत–सत्गुरु की कृपा से ही मिलता है।

सुरि नर मुनि जन अंमृतु खोजदे सु अंमृतु गुर ते पाइआ।।
पाइआ अंमृतु गुरि कृपा कीनी सचा मनि वसाइआ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰918)

बिना किसी सहायता के, कोई भी अपने उद्यम से इस 'हौज़–ए–क़ौसर' या 'ज़िंदगी के सरचश्मे' (स्रोत) को नहीं पा सकता। इसके लिए हमें एक ज़िंदा–जावेद संत–सत्गुरु की सहायता की ज़रूरत है, जिसने ख़ुद के लिए यह सरचश्मा खोज लिया हो और दूसरों को भी वहाँ तक पहुँचाने की क्षमता रखता हो।

और उसने मुझे बिल्लौर (Crystal) जैसी जीवन के साफ़ जल की एक पवित्र नदी दिखाई, जिसका पानी सीधा प्रभु के सिंहासन और मेमने से निकल रहा था।

– पवित्र बाइबिल (रहस्योद्घाटन 22:1)

अउखधु नामु निरमल जलु अंमृतु पाईऐ गुरू दुआरी।।
कहु नानक जिसु मसतकि लिखिआ तिसु गुर मिलि रोग बिदारी।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰616)

अंमृत रसु हरि गुर ते पीआ।। हरि पैनणु नामु भोजनु थीआ।।
नामि रंग नामि चोज तमासे नाउ नानक कीने भोगा जीउ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰99)

मेरे सतिगुरा हउ तुधु विटहु कुरबाणु।।
तेरे दरसन कउ बलिहारणै तुसि दिता अंमृत नामु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰52)

आपे ही प्रभु देहि मति हरि नामु धिआईऐ।।
वडभागी सतिगुरु मिलै मुखि अंमृतु पाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी बैरागणि म॰3, पृ॰163)

अंमृत सबदु अंमृत हरि बाणी।। सतिगुरि सेविए रिदै समाणी।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰119)

(घ) सत्गुरु का भाणा और हुक्म मानने से :

यदि तुम मुझसे प्यार करते हो, तो मेरा कहना मानो।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 14:15)

मन मेरे सतिगुर कै भाणै चलु।।
निज घरि वसहि अंमृतु पीवहि ता सुख लहहि महलु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰37)

गुर के भाणे विचि अंमृतु है सहजे पावै कोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰31)

संता संगि निधानु अंमृतु चाखीऐ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी रागु म॰4, पृ॰91)

हरि अंमृत बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰134)

नानक नामु जपै सो जीवै।। साधसंगि हरि अंमृतु पीवै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰200)

संत अमृत से भरपूर होता है और उसकी रहमत से भरी एक नज़र इंसान को पूरी तरह परिवर्तित कर देने के लिए काफ़ी है।

सतिगुर विचि अंमृतु है हरि उतमु हरि पदु सोइ।।
नानक किरपा ते हरि धिआईऐ गुरमुखि पावै कोइ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰300)

सतिगुरु पुरखु अंमृत सरु वडभागी नावहि आइ।।
उन जनम जनम की मैलु उतरै निरमल नामु दृड़ाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰4, पृ॰40)

इंसान दुनिया में इसलिए आता है, ताकि वह 'अमृत धारा' की सरिता से जुड़ सके और ऐसा संत–सत्गुरु की कृपा से ही संभव है। लेकिन बाहरी कर्मकांडों, वेष और भेष पर आधारित संप्रदायों और मतों से सिर्फ़ दुख और पीड़ा, द्वैत और वेदना ही मिल सकती है, और उनके आचरण द्वारा

'जीवन के सरोवर' तक नहीं पहुँचा जा सकता। 'नाम–रूपी अमृत' के सिवा कुछ भी किसी काम का नहीं है, और जो कोई उनकी भूल–भुलैया में खो जाता है, वह बाहर नहीं निकल पाता।

जिसु जल निधि कारणि तुम जगि आए सो अंमृतु गुर पाही जीउ।।
छोडहु वेसु भेख चतुराई दुबिधा इहु फलु नाही जीउ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰1, पृ॰598)

'अमृत' किसे मिल सकता है? :

करोड़ों श्रद्धालुओं में से कोई बिरला ही किसी जीवित संत–सत्गुरु के चरणों में बैठ कर 'अमृत' को पाता है।

अंमृत नामु भोजनु हरि देइ।।
कोटि मधे कोई विरला लेइ।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰3, पृ॰1335)

अंमृतु सचा वरसदा गुरमुखा मुखि पाइ।।
मनु सदा हरीआवला सहजे हरि गुण गाइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰428)

गुरमुखि धिआवहि सि अंमृतु पावहि सेई सूचे होही।।
अहिनिसि नामु जपहु रे प्राणी मैले हछे होही।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰1, पृ॰1254)

झिमि झिमे झिमि झिमि वरसै अंमृत धारा राम।।
गुरमुखे गुरमुखि नदरी रामु पिआरा राम।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰442)

हरि अंमृत कथा सरेसट ऊतम गुर बचनी सहजे चाखी।।
तह भइआ प्रगासु मिटिआ अंधिआरा जिउ सूरज रैणि किराखी।।
अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु सो देखिआ गुरमुखि आखी।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰4, पृ॰87)

मानव तन के हरिमंदिर में यह पूर्णता से ठाठें मार रहा है, पर मनमुख इसे प्राप्त नहीं कर पाते।

घर ही महि अंमृतु भरपूरु है मनमुखा सादु न पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰644)

हउ बलिहारी गुर आपणे जिनि सची बूझ दिती बुझाइ।।
जगतु मुसै अंमृतु लुटीऐ मनमुख बूझ न पाइ।।

— आदि ग्रंथ (मलार की वार म॰1, पृ॰1282)

'अमृत' के लाभ :

'अमृत' के वास्तव में अनगिनत लाभ हैं। इसके साथ जुड़ने से दुनिया के सभी रस और ख़ुशियाँ फीकी पड़ जाती हैं और आदमी एक सच्चा बैरागी बन जाता है।

ना तिसु भूख पिआस मनु मानिआ।। सरब निरंजनु घटि घटि जानिआ।।
अंमृत रसि राता केवल बैरागी गुरमति भाइ सुभाइआ।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1039)

'ज़िंदगी का पानी' ('अमृत') हर दिल में भरपूर मात्रा में बसता है। जो इसको चखता है, वह इसके आह्लादक नशे को जान जाता है। प्रभु–सत्ता से एकमेक होना प्रभु से ही एकमेक होना है और तब इंसान को अपने आख़िरी दुश्मन यानी मौत का भी डर नहीं रहता। न सिर्फ़ वह ख़ुद मुक्त होता है, बल्कि वह बहुत से दूसरों को भी आज़ादी दिलवा देता है।

अंदरु अंमृति भरपूरु है चाखिआ सादु जापै।।
जिन चाखिआ से निरभउ भए से हरि रसि ध्रापै।।
हरि किरपा धारि पीआइआ फिरि कालु न विआपै।।

— आदि ग्रंथ (मारू की वार म॰3, पृ॰1092)

तुधु आपे धरती साजीऐ चंदु सुरजु दुइ दीवे।।
दस चारि हट तुधु साजिआ वापारु करीवे।।
इकना नो हरि लाभु देइ जो गुरमुखि थीवे।।
तिन जमकालु न विआपई जिन सचु अंमृतु पीवे।।
ओइ आपि छुटे परवार सिउ तिन पिछै सभु जगतु छुटीवे।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰4, पृ॰83)

जो 'अमृत' की अनोखी दात पा लेता है, उसे अनेक असाधारण शक्तियाँ मिल जाती हैं और सुख और शान्ति प्राप्त होती हैं। इससे इंसान सभी दुख–दर्द, शक़ और भ्रम, विकारों और वासनाओं से मुक्त हो जाता है, और सबसे पुरातन बीमारी– अहंकार से भी और सभी इच्छाएँ व तृष्णाएँ सूखे पत्तों की तरह ऐसे झड़ जाती हैं, जैसे कोई जादूगर जादू कर गया हो। मन भी स्थिर और निर्मल हो जाता है। अन्त में इंसान को मुक्ति मिल जाती है, वह सहज अवस्था में पहुँच जाता है और प्रभु की दरगाह में पहुँचकर उसे सम्मान मिलता है।

संतों व महापुरुषों की शिक्षाओं से, जो प्रभु से एकमेक होने पर ज़ोर देती हैं, यह साफ़–साफ़ पता चलता है कि 'अमृत' कुछ और नहीं, बल्कि 'नाम', 'शब्द' या 'वर्ड' है और 'अमृत का सरोवर' हमारे सब के अंदर है। लेकिन यह तभी प्रकट होता है, जब हम पर किसी सच्चे संत–सत्गुरु की नज़रे–करम पड़ती है।

सिक्ख भाइयों में एक प्रथा है, खड्ग से 'अमृत' बनाने की। विश्लेषण करने से देखने पर पता चलता है कि यह भी 'नाम' या 'बानी' की सहायता से ही होता है। पहले सारा ध्यान अंतर्मुख किया जाता हैं, ताकि अन्तर के 'शब्द' से जुड़ा जाये और फिर यह दिव्यता में शराबोर 'शब्द' जैसे जैसे नीचे की ओर आकर बाहर्मुखी होता है, जिससे यह बाहर के (भोज्य) पदार्थ को 'अमृत' में बदल देता है। केवल एक सक्षम गुरु ही (एक सच्चा 'ख़ालसा', जिसमें पूर्ण ज्योति प्रकट हो) अपनी कृपा दृष्टि से 'अमृत' तैयार कर सकता है, और जो कोई उस 'अमृत' को पीता है, वह सच्चे रूप में अंतर्मुख हो जाता है। संत, जिसकी आँखों से सदैव प्रभु का नशा उमड़ता रहता है, किसी भी जीव को, एक क्षण में देहाभास से ऊपर 'रूपांतर के शीर्ष' ('Mount of Transfiguration') पर लाकर, संत बना सकता है।

अंमृत दृसटि पेखै होइ संत।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰287)

सत्गुरु की कृपा से इस रूहानी 'अमृत' को पिया जा सकता है और वे अति भाग्यवाली हैं, जो उसके संपर्क में आते हैं। वे ब्रह्मांडी चेतना की अमर–ज्योति में जागते हैं, जन्म–मरण के अनंत चक्र से मुक्त हो जाते हैं

और उसके महारस को पाकर सदा मग्न रहते हैं।

अंमृतु पीवहु सदा चिरु जीवहु हरि सिमरत अनद अनंता।।
रंग तमासा पूरन आसा कबहि न बिआपै चिंता।।
भवरु तुम्हारा इहु मनु होवउ हरि चरणा होहु कउला।।
नानक दासु उन संगि लपटाइओ जिउ बूंदहि चात्रिकु मउला।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰5, पृ॰496)

❀❀❀

अध्याय

: **8** :

कीर्तन

> भला ऐसी कौन सी भावना है, जिसे संगीत उत्पन्न न कर सके या दबा न सके?
>
> — ड्राइडेन (Dryden)

साधारणतया, जब संतों की वाणियाँ वाद्ययंत्रों की संगति के साथ गाई जाती हैं, तो उसे 'कीर्तन' कहा जाता है। यह संगीत– चाहे वाणी का हो या वाद्ययंत्रों का– अपनी आकर्षण शक्ति के कारण मन–मस्तिष्क पर अत्यधिक प्रभाव डालता है। कुछ समय के लिये यह मन और सूक्ष्म वृत्तियों को शांत कर देता है। संगीत, गले से निकला हो अथवा वाद्ययंत्रों से, यह लगभग सभी धामृक सभाओं में– चाहे वे हिंदू, सूफ़ी, ईसाई अथवा सिक्ख धर्म से संबंधित हों– महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हम में से हर एक सुंदर नज़ारों या सुरीले संगीत में से किसी एक या दूसरे की ओर अवश्य आकर्षित होता है; और इनमें से दूसरा, पहले की अपेक्षा अधिक आकर्षक है। सभी जीवित प्राणियों पर इसका विशेष प्रभाव होता है। उदाहरण के लिये, लंबी छलाँग लगाने वाले और तेज़ टाँगों वाले हिरण को ही लीजिए, जो सींगों वाले प्राणियों का बादशाह है, जिसके साथ दौड़ में कोई घोड़ा भी मुक़ाबला नहीं कर सकता। लेकिन संगीत की ताक़त से शिकारी उसे आकर्षित करके पकड़ लेते हैं। शिकारी अपना बिगुल बजाते हैं और हिरण संगीत पर मोहित होकर अपने आप को जल्द ही शिकारी के आगे समर्पित कर देता है। इसी तरह से ज़हरीला साँप भी, थोड़ी देर के लिये, सपेरे की बीन के प्रभाव में आकर अपनी ज़हरीली प्रकृति को भूल जाता है और बाक़ी ज़िंदगी सपेरे की पिटारी में बंद रह कर गुज़ारता है। मनुष्यों के ऊपर भी संगीत का ज़बरदस्त असर होता है। लेकिन जब तक

संगीत चलता रहता है, तभी तक वह मंत्रमुग्ध रहता है। बाहरी संगीत के द्वारा वह भावनात्मक प्रभाव से परे नहीं जा पाता और भौतिकता के मंडल के अंदर ही रह जाता है।

पवित्र ग्रंथों के अध्ययन से और सत्गुरुओं की शिक्षाओं से हमें यह पता चलता है कि आत्मा का आंतरिक संगीत या 'शब्द–धारा' या 'कीर्तन' प्रत्येक व्यक्ति के अंदर निंरतर चलता रहता है, और यदि इससे जुड़ा जाए और इसे ध्यानपूर्वक सुना जाए, तो यह पूर्ण मुक्ति की ओर ले जाता है। गुरु ग्रंथ साहिब में इस धुनि को 'अखंड–कीर्तन' कहा गया है।

कलि कीरति सबदु पछानु।।
एहा भगति चूकै अभिमानु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰424)

हरि कीरति उतमु नामु है विचि कलिजुग करणी सारु।।
मति गुरमति कीरति पाईऐ हरि नामा हरि उरि हारु।।

— आदि ग्रंथ (कानड़े की वार म॰4, पृ॰1314)

'कीर्तन', 'नाम' या 'शब्द' रूहानी तरक़्क़ी का एकमात्र साधन है। इस कीर्तन की गुंजार सर्वव्यापी और सभी को आलिंगित किए है। लेकिन यह प्रकट तभी होती है, जब आत्म–विश्लेषण और अंतर्मुख होने की प्रक्रिया द्वारा साधक जिस्मानी चेतना से ऊपर आ जाए। इसमें एक 'धुन' का गुण है, जिसका अनुभव मस्तक के बीच में 'सुषुम्ना' ('सुखमनि') या 'शाह–रग' नाड़ी के अंदर किया जाता है।

तेरे दुआरै धुनि सहज की माथै मेरे दगाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत कबीर, पृ॰970)

इस कलियुग में, जो कि चार युगों की चौकड़ी में से अंतिम है, कोई अन्य आध्यात्मिक साधन इतना फलप्रद व प्रभावकारी नहीं, जितना 'कीर्तन' या 'नाम' या 'हरि–कीर्तन' है, और यही तमाम क़िस्म के धामृक और श्रेष्ठ कर्मों का सार या निचोड़ है।

चहु जुगा का हुणि निबेड़ा नर मनुखा नो एकु निधाना।।
जतु संजम तीरथ ओना जुगा का धरमु है कलि महि कीरति हरि नामा।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰3, पृ॰797)

हरि कीरति रुति आई हरि नामु वडाई हरि हरि नामु खेतु जमाइआ।।
कलिजुगि बीजु बीजे बिनु नावै सभु लाहा मूलु गवाइआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰446)

किसी संत–सत्गुरु की कृपा से ही इस 'कीर्तन' का जीवित जागृत अनुभव प्राप्त हो सकता है।

राम नाम कीरतन रतन वथु हरि साधू पासि रखीजै।।
जो बचनु गुर सति सति करि मानै तिसु आगै काढि धरीजै।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1326)

धर्मग्रंथों में यह कहा गया है कि जो इंसान किसी संत–सत्गुरु के निकट रहते हैं, वे ही 'हरि–कीर्तन' के साथ जुड़ सकते हैं और उसका अभ्यास कर सकते हैं। सत्गुरु की भक्ति द्वारा ही कोई उस महान संगीत को सुन सकता है।

जिन कंउ सतिगुरु भेटिआ से हरि कीरति सदा कमाहि।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस की वार म॰3, पृ॰592)

जब ते दरसन भेटे साधू भले दिनस ओइ आए।।
महा अनंदु सदा करि कीरतनु पुरख बिधाता पाए।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰671)

हरि कीरति कलजुगि पदु ऊतमु हरि पाईऐ सतिगुर माझा।।
हउ बलिहारी सतिगुर अपुने जिनि गुपतु नामु परगाझा।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰4, पृ॰697)

अखंड कीरतनु तिनि भोजनु चूरा।। कहु नानक जिसु सतिगुरु पूरा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰236)

साध सेवा वडभागी पाईऐ।। साधसंगि हरि कीरतनु गाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰283)

संत प्रसादि जपै हरि नाउ।। संत प्रसादि हरि कीरतनु गाउ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰183)

साधसंगि हरि कीरतनु गाईऐ।। कहु नानक वडभागी पाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰179)

साधसंगि कीरतन फलु पाइआ।। जम का मारगु द्रिसटि न आइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰197)

चरन कमल गोबिंद रंगु लागा।।
संत प्रसादि भए मन निरमल हरि कीरतन महि अनदिनु जागा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी थिती भगत कबीर, पृ॰343)

नाम रसाइणि इहु मनु राता अंम्रितु पी त्रिपताई।।
संतसंगि मिलि कीरतनु गाइआ निहचल वसिआ जाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰915)

साधसंगि कलि कीरतनु गाइआ।। नानक ते ते बहुरि न आइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰253)

जिन कंउ सतिगुरु भेटिआ से हरि कीरति सदा कमाहि।।
अचिंतु हरि नामु तिन कै मनि वसिआ सचै सबदि समाहि।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस की वार म॰4, पृ॰592)

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा।।
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰642)

'हरि–कीर्तन' सत्गुरु की पवित्र देन है, और जब तक कि आत्मा स्थूल शरीर से ऊपर नहीं आती, वह इसको प्राप्त करने की अधिकारी नहीं बनती। जैसे चुंबक लोहे को खींचता है, वैसे ही प्रभु में से निकली 'शब्द–धुनि' आत्मा को खींचती है और अंत में उसे प्रभु के 'चरण–कमलों' में ले जाती है। इंसानी मन हमेशा ही एक या दुसरे क़िस्म के सुखों के पीछे भागता रहता है, लेकिन कोई भी संसारी सुख आत्मा को थोड़ी सी भी मुक्ति नहीं दिला सकता। मन को स्थिर व क़ाबू करने का एकमात्र तरीक़ा 'हरि–कीर्तन' या 'नाम' है, जिसे सुनकर यह "अनेक सिरों वाला मन रूपी नाग" वश में आ जाता है, जैसे कि किसी ने जादू कर दिया हो और शांत हो जाता है, जैसे कि मरणासन्न हो, और इसे उन ज्ञानेन्द्रियों का आभास ही नहीं रहता, जिनके माध्यम से यह आमतौर से काम करता है। जिस किसी ने भी मन को क़ाबू में किया है, ऐसा उन्होंने 'नाम' या 'हरि–कीर्तन' के द्वारा ही किया है। इसके द्वारा आत्मा युगों पुरानी गहन–निद्रा से जाग

जाती है और ब्रह्मांडीय और परा–ब्रह्मांडीय चेतनता पा जाती है। यह एक नया जन्म आत्मा का जन्म, जिसे पुनर्जन्म या दोबारा जीवित होना कहते हैं। इसके बाद आत्मा कर्मों के लेखे के जंजाल से बच जाती है, क्योंकि कर्मों के बीज भुन जाते हैं और उग नहीं पाते। यह आत्मा को वापिस 'प्रभु की बादशाहत' में पहुँचा देता है और उसे हमेशा रहने वाली शांति और मुक्ति दिला देता है।

मैं तुम्हें एक नया दिल दूँगा और एक नयी आत्मा तुम्हारे अंदर रख दूँगा।

– पवित्र बाइबिल (यहेज़केल 36:26)

अब 'शब्द–धारा' का खुलना संत–सत्गुरु की मौज और प्रसन्नता पर निर्भर करता है, और जब तक व्यक्ति स्थूल शरीर से ऊपर नहीं आ जाता, तब तक वह 'शब्द' के संपर्क में नहीं आ सकता। मन और माया की क़ैद से आज़ाद होने का यही रास्ता है, और अन्य कोई नहीं।

इहु मनु अंधा बोला है किसु आखि सुणाए।।
अंतरि लोभु भरमु अनल वाउ।। दीवा बलै न सोझी पाइ।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰364)

गावहि गीते चीति अनीते।। राग सुणाइ कहावहि बीते।।
बिनु नावै मनि झूठु अनीते।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰414)

'कीर्तन' के लाभ :

'कीर्तन' इस लोक में और परलोक में भी पूरी तरह से कारगर है :

ऐसा कीरतनु करि मन मेरे।। ईहा ऊहा जो कामि तेरै।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰236)

कीर्तन से द्वेष, ईर्ष्या व शत्रुता की तमाम भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं :

वैर विरोध मिटे तिह मन ते।। हरि कीरतनु गुरमुखि जो सुनते।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰259)

'कीर्तन' सभी बीमारियों और तकलीफ़ों– शारीरिक, मानसिक और आकस्मिक– की अचूक दवा है :

गुरि किरपालि कृपा प्रभि धारी बिनसे सरब अंदेसा।।
नानक सुखु पाइआ हरि कीरतनि मिटिओ सगल कलेसा।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी पूरबी म॰5, पृ॰213)

रोग सोग दूख तिसु नाही।। साधसंगि हरि कीरतनु गाही।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1085)

'कीर्तन' व्यक्ति को सभी घातक पापों और जिस्म–जिस्मानियत की काम–वासनाओं से मुक्त करा देता है :

सुखदाता दुख भंजनहारा गाउ कीरतनु पूरन गिआनु।।
कामु क्रोधु लोभु खंड खंड कीन्हे बिनसिओ मूड अभिमानु।।

– आदि ग्रंथ (नट म॰5, पृ॰979)

'अखंड–कीर्तन' जीवात्मा को युगों–युगों की लंबी नींद से जगा देता है :

भाइ भगति प्रभ कीरतनि लागै।। जनम जनम का सोइआ जागै।।

– आदि ग्रंथ (गोंड म॰5, पृ॰869)

पर धन पर तन पर की निंदा इन सिउ प्रीति न लागै।।
संतह संगु संत संभाखनु हरि कीरतनि मनु जागै।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰674)

सो किछु करि जितु मैलु न लागै।।
हरि कीरतन महि एहु मनु जागै।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰199)

'कीर्तन' मौत के पंजे से छुटकारा दिलाता है :

नरक निवारै दुख हरै तूटहि अनिक कलेस।।
मीचु हुटै जम ते छुटै हरि कीरतन परवेस।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी थिती म॰5, पृ॰297)

जो जनु करै कीरतनु गोपाल।। तिस कउ पोहि न सकै जमकालु।।

– आदि ग्रंथ (गोंड म॰5, पृ॰867)

जमदूतु तिसु निकटि न आवै।। साधसंगि हरि कीरतनु गावै।।

— आदि ग्रंथ (मारू म°5, पृ°1079)

'कीर्तन' से असीम शांति, संतुष्टि और आनंद प्राप्त होता है :

भइओ कृपालु दीन दुख भंजनु हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म°5, पृ°642)

नानक दास कीए प्रभि अपुने हरि कीरतनि रंग माणे जीउ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म°5, पृ°106)

'कीर्तन' प्रभु को मंजूर है और उससे इंसान की तमाम तमन्नाएँ पूरी हो जाती हैं :

कथा कीरतनु राग नाद धुनि इहु बनिओ सुआउ।।
नानक प्रभ सुप्रसंन भए बाँछत फल पाउ।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म°5, पृ°818)

जंमणु मरणु न तिन्ह कउ जो हरि लाड़ि लागे।।
जीवत से परवाणु होए हरि कीरतनि जागे।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी की वार म°5, पृ°322)

सभी धामृक साधनाओं से 'कीर्तन' सर्वश्रेष्ठ है :

नानक हरि कीरतनु करि अटल एहु धरम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी थिती म°5, पृ°299)

संतों ने असीम दया–मेहर से हमें बताया है :

सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ कीरति गाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म°9, पृ°902)

कीर्तन ही सच्चा योग है :

राज लीला तेरै नामि बनाई।। जोगु बनिआ तेरा कीरतनु गाई।।

— आदि ग्रंथ (आसा म°5, पृ°385)

'कीर्तन' समस्त प्राणियों की रक्षक जीवनधारा है :

मन हरि कीरति करि सदहूं।।
गावत सुनत जपत उधारै बरन अबरना सभहूं।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म°5, पृ°529)

जैसो गुरि उपदेसिआ मै तैसो कहिआ पुकारि।।
नानकु कहै सुनि रे मना करि कीरतनु होइ उधारु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी मालवा म॰5, पृ॰214)

'कीर्तन' से मन शांत व स्थिर हो जाता है :

गुरमुखि अखरु जितु धावतु रहता।।
गुरमुखि उपदेसु दुखु सुखु सम सहता।।
गुरमुखि चाल जितु पारब्रहमु धिआए गुरमुखि कीरतनु गाए जीउ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰131)

इकु जाचिकु मंगै दानु दुआरै।। जा प्रभ भावै ता किरपा धारै।।
देहु दरसु जितु मनु तृपतासै हरि कीरतनि मनु ठहराइदा।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1076)

❀❀❀

अध्याय

: **9** :

वाणी और गुरुवाणी

'वाणी' शब्द को पारिभाषित करना और मतलब समझना कठिन है। इसका असली अभिप्राय इसके आम प्रचलित अर्थ से कहीं ज़्यादा गूढ़ है। आम बोलचाल की भाषा में इसका मतलब है, वो वचन जिन्हें हम पढ़ते हैं, लिखते हैं या बोलते हैं। लेकिन संतों व महापुरुषों ने इसका प्रयोग बिलकुल ही अलग अर्थ में किया है। आम तौर पर 'वाणी', 'शब्द' और 'नाम' के अर्थों में कोई ख़ास फ़र्क नहीं है, क्योंकि ये तीनों एक ही चीज़ की ओर इशारा करते हैं।

'वाणी' या 'नाम' दो तरह के हैं : 'वर्णात्मक' और 'ध्वन्यात्मक'। 'वर्णात्मक' का मतलब है, हमारे अंतर के भावों की अभिव्यक्ति, जो शब्दों के द्वारा पढ़ने, लिखने या बोलने में आ सकें। 'ध्वन्यात्मक' का मतलब है, अंतर की आवाज़ या 'शब्द धुन'।

'वर्णात्मक वाणी' :

'वर्णात्मक वाणी' चार खंडों में बाँटी जा सकती है : 'बैखरी', 'मध्यमा', 'पश्यन्ति' और 'परा'।

बैख़री : यह वो होंठदार आवाज़ें है, जो हमारी जीभ और होंठों की सहायता से निकलती हैं।

* हिंदू धर्मग्रंथों के अनुसार चार प्रकार के प्राणी हैं, जिन्हें जन्म के तरीक़े के अनुसार क्रमबद्ध किया गया है यथा— स्वेदज : पसीने और सीलन से पैदा होने वाले, उद्भिज्ज : बीज से उत्पन्न होने वाले, अंडज : अंडों से पैदा होने वाले और जरायुज : गर्भ के अंदर झिल्ली में लिपटे हुए पैदा होने वाले प्राणी। महापुरुष अक्सर इस प्रकार के पुरातन हिंदू दृष्टांतों, विचारों और सिद्धांतों का प्रयोग करते रहते हैं, चाहे वे समझाने में वैज्ञानिक तौर से परिशुद्ध क्यों न हों, वरन् दिव्य–कवियों द्वारा समझाने के लिये प्रयोग में लाये सांकेतिक व पौराणिक माध्यम के तौर से।

मध्यमा : यह वो कंठदार आवाज़ें हैं, जो हमारे गले या फिर जीभ और तालू के पिछले हिस्से या जड़ से निकलती हैं।

पश्यन्ति : यह आवाज़ें वो होती हैं, जो हमारे हृदय चक्र से उठती हैं।

परा : ये वो आवाज़ें हैं, जो हमारी नाभि चक्र में हिलोर उठने से पैदा होती हैं।

ये चार तरह की आवाज़ें या शब्द, एक या दूसरे रूप में शरीर के छः भौतिक चक्रों से जुड़े हुए हैं और इनका 'नाम', 'शब्द' या 'लोगॉस' ('Logos') से कोई भी संबंध नहीं है, जिसका संपर्क जिस्म के छः चक्रों से ऊपर मिलता है। यह मुक्तिदायी है और तकनीकी तौर पर इसे 'ध्वन्यात्मक वाणी' या 'अनहद-शब्द' कहते हैं, जो दिव्य 'ज्योति' और 'जीवन' का भी स्रोत है। वास्तव में यही प्रभु की शाश्वत और अपरिवर्तनशील ध्वनि है।

अंमृत रसु सतिगुरू चुआइआ।। दसवै दुआरि प्रगटु होइ आइआ।।
तह अनहद सबद वजहि धुनि बाणी सहजे सहजि समाई हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰4, पृ॰1069)

पंच सखी मिलि मंगलु गाइआ।। अनहद बाणी नादु वजाइआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰375)

तेरीआ खाणी तेरीआ बाणी।।
बिनु नावै सभ भरमि भुलाणी।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰116)

संपूर्ण सृष्टि एक या दूसरे क़िस्म की 'वर्णात्मक वाणी' के द्वारा अभिव्यक्त होती है, न कि यह 'ध्वन्यात्मक वाणी' के द्वारा, और इस वजह से जीवन के महान चक्र में भटकती रहती है।

'वर्णात्मक वाणी' को 'प्राणों की वाणी' के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि यह विभिन्न प्रकार की स्पंदनों (vibrations) पर निर्भर रहती है, लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह भटकाने वाली है और इससे मुक्ति संभव नहीं।

आखणु सुनणा पउण की बाणी इहु मनु रता माइआ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰24)

'ध्वन्यात्मक (धुनात्मक) वाणी' :

यह वह शाश्वत 'शब्द–धारा' है, जो कि अनंत रूप से प्रत्येक जीवित प्राणी में गूँज रही है। यह बिन–लिखा क़ानून और अनबोली भाषा है। यह तत्वों और छः चक्रों की पहुँच से ऊपर है। यह 'वाणी' तभी सुनाई देती है, जब जीवात्मा शारीरिक चेतनता से ऊपर आ जाती है। सिक्खों के धर्मग्रंथ, गुरु ग्रंथ साहिब में इस 'शब्द–धुन' को उच्च रूहानी मंडलों से लेकर नीचे तक आमतौर से 'नाम' कहा गया है, और 'दशम द्वार' के नीचे, जहाँ तक कारण मंडल फैला है, इसे 'त्रैगुण बानी' या तीन गुणों के मंडलों की वाणी कहा गया है। इसे 'ब्रह्म जंजाला' या ब्रह्म (जो तीन गुणों की सृष्टि को बनाने वाला है) का जाल भी कहा गया है। यह 'त्रैगुण बानी' या 'ब्रह्म जंजाला' काल या प्रलय के दायरे में ही है; इसीलिये यह नाशवान है। कबीर साहिब कहते हैं :

जाप मरै अजपा मरे, अनहद हूँ मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताको काल न खाय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (शब्द का अंग 51, पृ.96)

गुरु अमरदास फ़रमाते हैं :

त्रै गुण बाणी ब्रहम जंजाला।।
पड़ि वादु वखाणहि सिरि मारे जमकाला।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰3, पृ॰230)

जो वाणी काल की पहुँच से बाहर है, उसे 'सत्–शब्द' कहते हैं, जिसे 'साची वाणी' भी कहा जाता है, और यही वह असली जीवनधारा या जीवन सूत्र है, जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ने में सक्षम है।

गुरमुखि सबदु अंमृतु है सारु।। नानक गुरमुखि पावै पारु।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰932)

त्रै गुण मेटे खाईऐ सारु।। नानक तारे तारणहारु।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰940)

आपै आपु मिलाए बूझै ता निरमलु होवै कोइ।।
हरि जीउ सचा सची बाणी सबदि मिलावा होइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰64)

वाहु वाहु बाणी सचु है सचि मिलावा होइ।।
नानक वाहु वाहु करतिआ प्रभु पाइआ करमि परापति होइ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म॰3, पृ॰514)

से जन मिले धुरि आपि मिलाए।। साची बाणी सबदि सुहाए।।
नानक जनु गुण गावै नित साचे गुण गावह गुणी समाहा हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1057)

निरभउ दाता सदा मनि होइ।। सची बाणी पाए भागि कोइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰361)

जिन्ह कै पोतै पुंनु तिन्हा गुरू मिलाए।। सचु बाणी गुरु सबदु सुणाए।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰364)

अनहद बाणी गुरमुखि वखाणी जसु सुणि सुणि मनु तनु हरिआ।।
सरब सुखा तिस ही बणि आए जो प्रभि अपना करिआ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰781)

बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ।।
इह बाणी महा पुरख की निज घरि वासा होइ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰935)

सचा सबदु सची है बाणी।। गुरमुखि जुगि जुगि आखि वखाणी।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰424)

इसका अर्थ यह नहीं कि संत जो शब्द मुख से बोलते हैं, उन का कोई प्रभाव या महत्व नहीं। बल्कि इसके विपरीत, इसका अर्थ यह है कि तमाम वर्णात्मक शब्दों और ध्वनियों में से केवल इन्हीं को सर्वोच्च स्थान मिलता है, क्योंकि उनके शब्द उस अनंत निधि या स्त्रोत से निकलते हैं, जो कि सभी संतों–सत्गुरुओं (फ़ुकरा–ए–क़ामिलों) का आधार है, और वे वही कुछ बयान करते हैं, जो कुछ वे अपनी आत्मा की गहराइयों में देखते और अनुभव करते हैं। उनके शब्द सत्य के खोजियों के लिये मनों सोने और हीरे–जवाहरातों के बराबर हैं। वे बौद्धिक स्तर से नहीं बोलते, बल्कि वचन उनके अंदर से अपने आप उभरते हैं और वे अंतप्रेरणा से ओत–प्रोत होते हैं और विश्वास दिलाने की क्षमता रखते हैं।

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो।।

— आदि ग्रंथ (तिलंग म॰1, पृ॰722)

बाणी उचरहि साध जन अमिउ चलहि झरणे।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰5, पृ॰320)

प्रभु की आत्मा मुझमें होकर बोली और उसका 'शब्द' मेरी ज़ुबान पर आ गया।

— पवित्र बाइबिल (II शमूएल 23:2)

प्रभु के बंदे ऐसे बोलते थे कि मा'नो प्रभु की पवित्र आत्मा ने उन्हें बोलने को प्रेरित किया हो।

— पवित्र बाइबिल (II पतरस 2:21)

बेसुमार अथाह अगनत अतोलै।
जिउ बुलावहु तिउ नानक दास बोलै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰292)

संतों की वाणियाँ उनके रूहानी अनुभवों के अद्‌भुत और बेशक़ीमती प्रमाण हैं, और वे आध्यात्मिक पथ के तीर्थ यात्रियों के लिए मील-पत्थर का काम करते हैं।

सतिगुरू बिना होर कची है बाणी।।
बाणी त कची सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी।।
कहदे कचे सुणदे कचे कचीं आखि वखाणी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰920)

अनदिनु नामु जपहु गुरसिखहु हरि करता सतिगुरु घरी वसाए।।
सतिगुर की बाणी सति सति करि जाणहु गुरसिखहु
हरि करता आपि मुहहु कढाए।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰308)

हरि जन ऊतम ऊतम बाणी मुखि बोलहि परउपकारे।।
जो जनु सुणै सरधा भगति सेती करि किरपा हरि निसतारे।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी वार म॰4, पृ॰493)

अंमृत बचन साध की बाणी।।
जो जो जपै तिस की गति होवै हरि हरि नामु नित रसन बखानी।।
— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰744)

भगत जना की ऊतम बाणी गावहि अकथ कथा नित निआरी।।
सफल जनमु भइआ तिन केरा आपि तरे कुल तारी।।
— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰4, पृ॰507)

संतों की वाणियाँ हमें 'सच्ची वाणी' का इशारा देती हैं, जो कि सृष्टि का जीवन आधार है और हमें मुक्ति या निर्वाण प्रदान करती है। यही असली निराकार और परिपूर्ण 'सच' है, 'सहज कथा' और 'अकथ कथा' है। यह 'प्रभु की वाणी' है, स्वयं ही बहते रहने वाला 'अमृत' – चाहे इसे 'नाम' या 'शब्द', 'वर्ड', 'अमृत', 'लोगॉस', 'कलमा', 'बाँगे–इलाही' या 'श्रुति' कहो। यह संपूर्ण सृष्टि का स्रोत व उसकी आत्मा है। यही 'ज़िंदगी' और 'ज्योति' है, स्वःप्रकाशमान है, छायारहित है और सदा प्रज्ज्वलित है।

गुर का सबदु अंमृत है बाणी।। अनदिनु हरि का नामु वखाणी।।
हरि हरि सचा वसै घट अंतरि सो घटु निरमल ताहा हे।।
— आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1057)

सचु बाणी सचु सबदु है जा सचि धरे पिआरु।।
हरि का नामु मनि वसै हउमै क्रोधु निवारि।।
— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰33)

अंमृत सबदु अंमृत हरि बाणी।। सतिगुरि सेविऐ रिदै समाणी।।
— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰119)

सची बाणी सचु धुनि सचु सबदु वीचारा।।
अनदिनु सचु सलाहणा धनु धनु वडभाग हमारा।।
— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰3, पृ॰564)

एको गिआनु धिआनु धुनि बाणी।। एकु निरालमु अकथ कहाणी।।
एको सबदु सचा नीसाणु।। पूरे गुर ते जाणै जाणु।।
— आदि ग्रंथ (बसंत म॰1, पृ॰1188)

करि किरपा अपुना दासु कीनो बंधन तोरि निरारे।।
जपि जपि नामु जीवा तेरी बाणी नानक दास बलिहारे।।
— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰531)

अकथ कथा अंमृत प्रभ बानी।। कहु नानक जपि जीवे गिआनी।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰806)

निरमल सोभा अंमृत ता की बानी।। एकु नामु मन माहि समानी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰296)

सुणि वडभागीआ हरि अंमृत बाणी राम।।
जिन कउ करमि लिखी तिसु रिदै समाणी राम।।

— आदि ग्रंथ (बिहागड़ा म॰5, पृ॰545)

वेदों में हमें 'वाग्देवी' ('दिव्य वाणी') का अद्भुत वर्णन मिलता है, जो कहती है :

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराभ्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभम्यर्हमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।

मया सो अन्नमत्ति यो विषश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धियं ते वदामि।।

— ऋग्वेद (वागम्भृणी सूक्त, 10:125.1,4)

(ज्ञान और शक्ति को भरने वाली ईश्वरीय वाणी की देवी, वागम्भृणी कहती है कि समस्त जड़ के देवतागण— 11 रुद्र, 8 वसु, 12 आदित्य, विश्वेदेवाः, मित्र और वरुण, इन्द्र और अग्नि, 2 अश्विन मुझ में निवास करते हैं और मैं उन सभी का संचालन करती हूँ। मैं तमाम सृष्टि का दक्ष तथा पार्थिव प्राकृतिक कारण भी हूँ और मैं ही उसका पालन–पोषण करती हूँ। मैं ही ज्ञान और विज्ञान की ज्योति हूँ।)

और आगे,

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व1न्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारममाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैताबती महिम्ना सं बभूव।।

— अथर्ववेद (काण्ड 4, सूक्त 30. 7, 8)

(मैं ही सभी जगत के मंडलों और लोकों का पालने करने वाली हूँ, और मैं प्राणवायु की तरह सभी रूपों व शरीरों में व्याप्त हूँ। आकाश तत्त्व के रूप में मैं अंतरिक्ष में बसी हूँ और ब्रह्मांड को घेरे हुए हूँ। यहाँ–वहाँ–सर्वत्र ही मैं पूर्ण रूप

से विद्यमान हूँ, धरती और आकाश से परे, अनंत सौर मंडलों में, तथा मेरी स्वाभाविक शक्ति से ही उन्होंने शक्लें और रंग धारण किए हैं।)

इस वाग्देवी या 'वाणी' के अंदर 'धुन' या समस्वर है, जो निराकार प्रभु (कूटस्थ) की मुख्य अभिव्यक्ति (इज़हार) है।

अनहत बाणी थानु निराला।। ता की धुनि मोहे गोपाला।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰186)

गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी।। सिमृति सासत्र बेद बखाणी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰296)

देव सथानै किआ नीसाणी।। तह बाजे सबद अनाहद बाणी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत बेनी, पृ॰ 974)

यह सदा विद्यमान ध्वनि है, जो समय और स्थान से बँधी हुई नहीं है।

आखणु वेखणु बोलणा सबदे रहिआ समाइ।।
बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुणाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰35)

सचा सबदु सची है बाणी।। गुरमुखि जुगि जुगि आखि वखाणी।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰424)

सची बाणी जुग चारे जापै।। सभु किछु साचा आपे आपै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰3, पृ॰158)

चहु जुग महि अंमृतु साची बाणी।। पूरै भागि हरि नामि समाणी।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰3, पृ॰665)

हरि के गुण गावा जे हरि प्रभ भावा।। अंतरि हरि नामु सबदि सुहावा।।
गुरबाणी चहु कुंडी सुणीऐ साचै नामि समाइदा।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1065)

सभि नाद बेद गुरबाणी।। मनु राता सारिगपाणी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰879)

वाहु वाहु बाणी निरंकार है तिसु जेवडु अवरु न कोइ।।
वाहु वाहु अगम अथाहु है वाहु वाहु सचा सोइ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म॰3, पृ॰515)

अब प्रश्न उठता है कि यह 'शब्द–सिद्धांत' कहाँ है, जो कि चारों युगों में गूँजता रहता है और इसे कैसे पाया जा सकता है? गुरु नानक इसके बारे में फ़रमाते हैं :

घट अंतरे साची बाणी साचो आपि पछाणे राम।।
आपु पछाणहि ता सचु जाणहि साचे सोझी होई।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰769)

अंमृतु तेरी बाणीआ।। तेरिआ भगता रिदै समाणीआ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰72)

तेरे दुआरै धुनि सहज की माथै मेरे दगाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत कबीर, पृ॰ 970)

ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ यह पूर्ण रूप से मौजूद न हो, क्योंकि यह 'वाणी' अंदर, बाहर सभी जगह व्याप्त है, सर्वव्यापी है।

अंतरि बाहरि तेरी बाणी।। तुधु आपि कथी तै आपि वखाणी।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰99)

गुर की बाणी सभ माहि समाणी।। आपि सुणी तै आपि बखाणी।।
जिनि जिनि जपी तेई सभि निसत्रे तिन पाइआ निहचल थानाँ हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1075)

प्रभु की 'वाणी', प्रभु की 'ज्योति' से निकलती है। इसलिये, सच्ची उपासना 'शब्द–धारा' की कमाई में ही निहित है, क्योंकि यह इंसान को प्रभु से जोड़ती है। पलटू साहिब फ़रमाते हैं :

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।।
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।।
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै।।
निकसै एक आवाज चिराग की जोतिहिं माहीं।।
ज्ञान समाधी सुनै और और कोउ सुनता नाहीं।।
पलटू जो कोई सुनै ताके पूरे भाग।।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।।

— पलटू साहब की वाणी, भाग 1 (कुंडली 169)

मनु बैरागि रतउ बैरागी सबदि मनु बेधिआ मेरी माई।।
अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई।।
— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰1, पृ॰634)

प्रसिद्ध दस नियम, जो कि हज़रत मूसा की विधि का सार हैं, वे हजरत मूसा को गर्जन और लपटों के बीचों–बीच प्राप्त हुए। तमाम सृष्टि 'नाम' की सत्ता से जीवित है यानी प्रभु की 'ज्योति' और 'श्रुति' के सहारे टिकी हुई है।

ओह? एक ज़िंदगी ही हमारे और दूसरों के अंदर है, जो कि उसकी हर हलचल में है, और उनकी आत्मा है। वह शक्ति 'ध्वनि के अंदर की ज्योति' है या 'ज्योति के अंदर की धुन' समान है। वह हर विचार का लय और ताल है, और उससे सर्वत्र आनंद मिलता है।
— एस॰ टी॰ कोलरिज [The Eolian Harp]

संत हमें बतलाते हैं कि 'शब्द–ध्वनि' माथे के बीच की नाड़ी 'सुषुम्ना' के अंदर (जो कि इसके इर्द–गिर्द 'इड़ा' और 'पिंगला' नाड़ियों के बीच स्थित है) गूँजती रहती है।

पूरे गुर की साची बाणी।।
सुख मन अंतरि सहजि समाणी।।
— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰3, पृ॰663)

हम में से प्रत्येक के अंदर इसका निवास है, लेकिन केवल एक संत या क़ामिल सत्गुरु ही हमें इसका अनुभव दिला सकता है।

वाहु वाहु पूरे गुर की बाणी।।
पूरे गुर ते उपजी साचि समाणी।।
— आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰754)

दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी।।
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी।।
— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰922)

गुरमती नामु रिदै वसाए।। साची बाणी हरि गुण गाए।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰1, पृ॰222)

अंमृत बाणी सतिगुर पूरे की जिसु किरपालु होवै तिसु रिदै वसेहा।।
आवण जाणा तिस का कटीऐ सदा सदा सुखु होहा।।

— आदि ग्रंथ (रामकली की वार म॰5, पृ॰960)

आपे आपि मिलै ता बूझै।। गिआन विहूणा किछू न सूझै।।
गुर की दाति सदा मन अंतरि बाणी सबदि वजाई हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1044)

जिस की बाणी तिसु माहि समाणी।।
तेरी अकथ कथा गुर सबदि वखाणी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰3, पृ॰160)

एक संपूर्ण सत्गुरु की कृपा से ही कोई प्रभु की वाणी को सुन सकता है। यह सत्गुरु से बतौर तोहफ़े में मिलती है और हम किसी अन्य तरीक़े से इसे प्राप्त नहीं कर सकते। सच्ची बात तो यह है कि सत्गुरु 'शब्द–देहधारी' है और दोनों एक दूसरे में समाये हुए हैं। गुरु अर्जन अपने सत्गुरु को संबोधित करके कहते हैं :

तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰96)

बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंमृतु सारे।।
गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै परतखि गुरू निसतारे।।

— आदि ग्रंथ (नट म॰4, पृ॰982)

भाई गुरदास ने भी यही कहा है :

बेद ग्रंथ गुरु हट है, जिस लग भवजल पार उतारा।।
सतिगुर बाझ न बुझीऐ जिच्चर धरे न प्रभु अवतारा।।

— भाई गुरदास, वारां गिआन रतनावली (1:17)

गुरु ग्रंथ साहिब में इसे 'गुपती वाणी', 'अनहद वाणी' और 'अगढ़ वाणी' या 'अनबोली वाणी' कहा गया है।

गुपती बाणी परगटु होइ।। नानक परखि लए सचु सोइ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰944)

अनहद बाणी पूंजी।। संतन हथि राखी कूंजी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰893)

गुरमुखि साचे का भउ पावै।।
गुरमुखि बाणी अघड़ु घड़ावै।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰941)

'बाणी' के लाभ :

(क) यह शाश्वत शांति प्रदान करती है, जिससे मुक्ति का रास्ता प्रशस्त होता है :

अंमृत बाणी हरि हरि तेरी।। सुणि सुणि होवै परम गति मेरी।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰103)

(ख) इसके द्वारा अहंकार के नासूर नष्ट हो जाते हैं :

अनहद बाणी पाईऐ तह हउमै होइ बिनासु।।
सतगुरु सेवे आपणा हउ सद कुरबाणै तासु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰21)

निरमल बाणी निज घरि वासा।। नानक हउमै मारे सदा उदासा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰362)

(ग) इससे आत्म-ज्ञान प्राप्ति में मदद मिलती है और यह आत्मा को त्रिगुणात्मक मंडलों के परे ले जाती है :

त्रिभवण सूझै आपु गवावै।। बाणी बूझै सचि समावै।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰412)

गुर सेवा ते त्रिभवण सोझी होइ।। आपु पछाणि हरि पावै सोइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰423)

(घ) इससे सभी पाप और दुख नष्ट हो जाते हैं :

निरमल सबदु निरमल है बाणी।। निरमल जोति सभ माहि समाणी।।
निरमल बाणी हरि सालाही जपि हरि निरमलु मैलु गवावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰121)

(च) यह पाप रूपी महाव्याधियों को हर लेती है :

जीति लए ओइ महा बिखादी सहज सुहेली बाणी।।

कहु नानक मन भइआ परगासा पाइआ पदु निरबाणी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰206)

(छ) यह हर तरीक़ों से मदद करती है, प्रत्येक कार्य पूर्ण करती है और मन व जिस्म को सुकून प्रदान करती है :

बाणी राम नाम सुणी सिधि कारज सभि सुहाए राम।।
रोमे रोमि रोमि रोमे मै गुरमुखि रामु धिआए राम।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰443)

'वाणी' की मदद के बग़ैर, साधक अज्ञान में रहता हुआ ज़िंदगी के जंगल में भटक जाता है और सदा ही भय और मानसिक कष्टों का शिकार रहता है।

न सबदु बूझै न जाणै बाणी।। मनमुखि अंधे दुखि विहाणी।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰3, पृ॰665)

यही कारण है कि गुरुवाणी में 'बानी' के श्रवण पर अधिक ज़ोर दिया गया है।

आवहु सिख सतिगुरू के पिआरिहो गावहु सची बाणी।।
बाणी त गावहु गुरू केरी बाणीआ सिरि बाणी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰920)

यह 'बानी' प्रभु के 'हुक्म' से, (उसकी आज्ञा से) अस्तित्व में आती है और प्रभु की आज्ञा से ही कोई उसे सुन सकता है।

तुधु भावै ता गावा बाणी।। तुधु भावै ता सचु वखाणी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰180)

गुरूवाणी :

'गुरुवाणी' 'बानी' से अलग कोई वस्तु नहीं। वास्तव में, दोनों समानार्थ हैं, क्योंकि यह 'वाणी' सत्गुरु की कृपा से ही प्रकट होती है, इसलिये इसे 'गुरुवाणी' कहा जाता है।

तमाम दुनिया के लिए 'गुरुवाणी' 'परलोक की ज्योति' है और दुखी लोगों के लिये यह ज्योतिस्तंभ का काम करती है।

गुरबाणी इसु जग महि चानणु करमि वसै मनि आए।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰67)

'गुरुवाणी' के साथ जुड़ने से तमाम मानसिक व शारीरिक गंदगियाँ धुल जाती हैं और आत्मा का परमात्मा में मिल जाना सक्षम हो जाता है। जो कोई भी 'शब्द' की कमाई करता है, वह मौत के मुँह से बच जाता है और 'प्रभु की बादशाहत' में वापिस पहुँच जाता है।

भगति भंडार गुरबाणी लाल।। गावत सुनत कमावत निहाल।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰376)

'गुरुवाणी','नाद' है, जो 'अनहद धुनि' या 'ध्वनि–सिद्धांत' है।

हरि के गुण गावा जे हरि प्रभ भावा।। अंतरि हरि नामु सबदि सुहावा।।
गुरबाणी चहु कुंडी सुणीऐ साचै नामि समाइदा।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1065)

सभि नाद बैद गुरबाणी।। मनु राता सारिगपाणी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰879)

बूझहु हरि जन सतिगुर बाणी।। एहु जोबनु सासु है देह पुराणी।।
आजु कालि मरि जाईऐ प्राणी हरि जपु जपि रिदै धिआई हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1025)

अध्याय

: **10** :

गुरु-मंत्र

सिक्ख धर्मग्रन्थों में हमें प्रायः 'गुरुवाणी', 'बानी', 'शब्द' या 'नाम' के संदर्भ मिलते हैं, जो सभी समानार्थक हैं। सर्वोच्च दर्जे के सत्गुरु सदैव 'नाम' या 'शब्द' से ता'ल्लुक रखते हैं और वे 'सत्' के साधकों को इसकी महत्ता समझाते हैं, क्योंकि यह उन्हें प्रभु–पथ पर अग्रसर करा देता है। ईसा मसीह इसे 'वर्ड' ('Word') या 'लोगॉस' ('Logos'), 'होली स्पिरिट' ('Holy Spirit' या 'पवित्र आत्मा') या 'कंफ़र्टर' ('Comforter' या 'सांत्वनादाता') कहते हैं, जिसके द्वारा हम अपने अंदर प्रभु को फिर से पा जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं।

सुणि सजण जी मैड़डे मीता राम।। गुरि मंत्रु सबदु सचु दीता राम।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰576)

सतिगुरि मंत्रु दीओ हरि नाम।। इह आसर पूरन भए काम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰196)

गुरु का ये मंत्र बड़े ऊँचे भाग्य से मिलता है।

गुर दीखिआ जिह मनि बसै नानक मसतकि भागु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰260)

इस 'वर्ड' या 'नाम' में 'ज्योति' भी है और 'ध्वनि' भी। दरअसल, सत्गुरु की कृपा द्वारा, यह अलौकिक ज्योति प्रत्येक व्यक्ति के अंदर प्रकट हो सकती है; यह एक ऐसी ज्योति है, जो छायारहित है, जो धरती पर व समुद्र में कभी भी नहीं मिलती, जो स्वः–प्रकाशित है, जो अंधकार में भी प्रज्ज्वलित रहती है। यह ऐसी ज्योति है, जो हज़ारों उगे सूर्यों से भी ज़्यादा तेज़ है। यह स्वर्ग की 'सर्व–प्रभुत्तासंपन्न ज्योति' है।

अंधकार महि गुर मंत्रु उजारा।। गुर कै संगि सगल निसतारा।।

— आदि ग्रंथ (गौड़ म॰5, पृ॰864)

मैं 'संसार की ज्योति' हूँ। वह जो मेरा अनुसरण करेगा, उसे अंधेरे में चलना नहीं होगा, बल्कि उसे भी 'जीवन की ज्योति' मिलेगी।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 8:12)

तुम्हें उसकी प्रशंसा गानी चाहिये, जिस ने तुम्हें अंधकार में से निकाल करके अद्‌भुत और शानदार ज्योति के अंदर प्रविष्ट करा दिया है।

— पवित्र बाइबिल (I पतरस 2:9)

'नाम' या 'वर्ड' का निवास मानव की आत्मा की गहराइयों में है।

हरि ऊतमु रिद अंतरि भाइओ गुरि मंतु दीओ हरि कान।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती बिभास म॰4, पृ॰1335)

क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारा शरीर 'पवित्र आत्मा' का मंदिर है, जो कि तुम्हारे अंदर है, जो तुम्हें प्रभु से मिली है और तुम स्वयं भी अपने बनाये नहीं हो?

— पवित्र बाइबिल (I कुरिन्थियों 6:19)

केवल जीवित सत्गुरु की कृपा से ही 'नाम' या 'वर्ड' प्रकट होता है, क्योंकि ये केवल उसी की दी हुई भेंट है, और उसी के द्वारा यह पाई जाती है; इसको कमाया नहीं जा सकता।

आठ पहर गावत भगवंतु।। सतिगुरि दीनो पूरा मंतु।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1150)

कृपा द्वारा ही तुम श्रद्धा और विश्वास से बचा लिये जाते हो और अपने निजी प्रयास से नहीं। यह तो प्रभु का दिया तोहफ़ा है।

— पवित्र बाइबिल (इफ़सियों 2:8)

हम सभी अपवित्र चीज़ों के समान हैं और हमारी तमाम अच्छाइयाँ भी फटे पुराने चीथड़ों के समान बहुत तुच्छ हैं।

— पवित्र बाइबिल (यशाइया 64:6)

प्रभु की कृपा से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

— पवित्र बाइबिल (तीतुस 2:11)

उनकी मुक्ति किसी अन्य में निहित नहीं, क्योंकि आसमान के नीचे मुनष्यों के भीतर, अन्य कोई नाम ऐसा नहीं, जो हमें बचा सकेगा।

— पवित्र बाइबिल (कार्य 4:12)

'गुरुमंत्र' या 'पवित्र आत्मा' ('Holy Spirit') की महानता का शब्दों में बयान करना संभव नहीं है। यह 'प्रभु की बादशाहत' को खोलने के लिये एक चाबी है। इसके द्वारा पहले इंसान, एक सच्चा इंसान बनता है और फिर शनैः शनैः प्रभु हो जाता है। अपने 'खोये हुए स्वर्ग' को इंसान दुबारा पा जाता है। जैसे–जैसे वह अपने आप को पहचानता है, वह ज़िंदगी के असली मानक और अपनी आत्मा और परमात्मा की एकता को समझ जाता है, और अंततः दोनों (आत्मा और परमात्मा) मिलकर एक हो जाते हैं। उसके बाद, उसका अपना अलग अस्तित्व नहीं रहता, बल्कि वह 'प्रभु की दिव्य योजना का चैतन्य सहकर्मी' बनकर उस प्रभु की शान और महत्ता में अपना हिस्सा बँटाता है।

सरब कला सोई परबीन।। नाम मंत्रु जा कउ गुरि दीन।।

— आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1298)

ईसा मसीह 'पवित्र आत्मा' ('Holy Ghost') के कार्य को इस तरीक़े से बयान करते हैं :

...मैं उस 'सांत्वनादाता' को तुम तक भेज दूँगा। और जब वह आ जायेगा, तो वह संसार को पापों से मुक्त करा कर सच्चाई और न्याय के रास्ते पर लगा देगा...जब वह 'पवित्र आत्मा' प्रकट होगी, तुम्हारा वह सत् की ओर मार्गदर्शन करेगी...

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 16:7-8,13)

'नाम' या 'वर्ड' सिर्फ़ सत्गुरु से मिलता है, यह उसका एक उपहार ही है। न तो इसे कमाया जा सकता है और न ही इसे सीखा जा सकता है। जब 'नाम' मिलना हो, यह तभी मिलता है और सिर्फ़ प्रभु (या सत्गुरु) की दया से मिलता है। आत्मिक अंतर्दृष्टि न तो सिखाई जा सकती है और न ही ख़रीदी जा सकती है, लेकिन छूत की तरह से इसे पकड़ा जा सकता है,

किसी ऐसे इंसान से, जो इससे ओतप्रोत हो। जैसे ज्योति से ज्योति आती है, इसी तरह से ज़िंदगी से ज़िंदगी आती है, और जिसे यह मिल जाये, वह वास्तव में धन्य है।

साधसंगि जपिओ भगवंतु।। केवल नामु दीओ गुरि मंतु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰183)

'गुरु-मंत्र' के अंदर एक महान प्रभावशाली बचाने की शक्ति होती है। मौत के वक़्त यह गुरु के नूरी स्वरूप की सूरत में आती है और आत्मा को वापिस प्रभु के भवन में ले जाती है; और ऐसी आत्मा, बिना किसी रुकावट के, एक भवन से दूसरे मंडल में होती हुई अग्रणी होती जाती है और प्रत्येक मंडल में उसका स्वागत-सम्मान होता है। इस धरती पर रहते हुए भी, ऐसी आत्मा अपना समय जीवन की परेशानियों से बहुत ऊपर उठकर गुज़ारती है।

हरि जपु मंतु गुर उपदेसु लै जापहु
तिन्ह अंति छडाए जिन्ह हरि प्रीति चितासा।।
जन नानक अनदिनु नामु जपहु हरि संतहु
इहु छूटण का साचा भरवासा।।

— आदि ग्रंथ (गोंड म॰4, पृ॰860)

दुखु कलेसु न भउ बिआपै गुर मंत्रु हिरदै होइ।।
कोटि जतना करि रहे गुर बिनु तरिओ न कोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰51)

जा कउ गुरु हरि मंत्रु दे।। सो उबरिआ माइआ अगनि ते।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰211)

नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुर गोबिंदु।।
कहु नानक इह जगत मै किन जपिओ गुर मंतु।।

— आदि ग्रंथ (सलोक म॰9, पृ॰1429)

गुर मंत्र हीणस्य जो प्राणी ध्रिगंत जनम भ्रसटणह।।
कूकरह सूकरह गरधभह काकह सरपनह तुलि खलह।।

— आदि ग्रंथ (सलोक सहसक्रिती म॰5, पृ॰1356)

⌘⌘⌘

अध्याय

: **11** :

वक्खर
(सच्चा सौदा)

धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि मनुष्य जन्म का उद्देश्य 'वक्खर' अर्थात 'नाम' या 'शब्द' का व्यापार करना है, क्योंकि इसके द्वारा ही प्रभु की बादशाहत के द्वार खुलते हैं और प्रभु के दरबार में आत्मा मंज़ूरे–नज़र होकर सम्मान पाती है। इसलिए 'वक्खर' का सही अर्थ है, "'शब्द' से जुड़ना तथा उसका अभ्यास।"

सचु सउदा लै गुर वीचारी।।
सचा वखरु जिसु धनु पलै सबदि सचै ओमाहा हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1032)

हिकु सेवी हिकु संमला हरि इकसु पहि अरदासि।।
नाम वखरु धनु संचिआ नानक सची रासि।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी की वार म॰ 5, पृ॰ 710)

साच वखर के हम वणजारे।। नानक गुरमुखि उतरसि पारे।।

— आदि ग्रंथ (रामकली सिध गोसटि, म॰ 1, पृ॰ 939)

'वक्खर' या 'नाम' का व्यापार, संतों के पास ढ़ेर सारा होता है और केवल उनसे ही कोई इसे पा सकता है।

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ।।
राम नामु संतन घरि पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰283)

मनु परदेसी आइआ मिलिओ साध कै संगि।।
जिसु वखर कउ चाहता सो पाइओ नामहि रंगि।।

— आदि ग्रंथ (आसावरी म॰5, पृ॰431)

जैसे कि व्यापारिक सामान इकट्ठा करने और उसे आगे बाँटने के लिए हमारे पास वाणिज्य केंद्र मौजूद हैं, उसी तरह से इंसानी जिस्म के अंदर भी हमारे पास एक केंद्र है, जहाँ 'वक्खर' इकट्ठा किया जा सकता है, इसका भंडारन किया जा सकता है और इसे बाँटा जा सकता है। परन्तु पहले इसे आत्मा की गहराइयों की खान में से, सत्गुरु की कृपा, मार्गदर्शन और मदद से खोद कर निकाला जाता है।

इहु तनु हाटु सराफ को भाई वखरु नामु अपारु।।
इहु वखरु वापारी सो दृड़ै भाई गुर सबदि करे वीचारु।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰1, पृ॰636)

꧁꧁꧁

अध्याय

: **12** :

दीक्षा

लगभग सभी धामृक ग्रथों की शिक्षाओं में, किसी न किसी शक्ल में, हमें ऐसा शब्द मिलता है, जिसका अर्थ 'दीक्षा' या किसी व्यक्ति को आत्म–विज्ञान के सिद्धांतों से परिचित कराना होता है। इसके लिए आम–तौर पर मुसलमान लोग 'बैअत' शब्द का प्रयोग करते हैं, जबकि दूसरे इसे 'दीक्षा' कहते हैं। ईसाइयों में चर्च में दाख़िल होने को 'बपतिस्मा' कहते हैं। हिन्दू इसे 'द्विज' या 'दोजन्मा' होना कहते हैं।

परा–विज्ञान के सिद्धांतों में दीक्षाग्रहण केवल मात्र औपचारिक या ज़बानी तौर से समझना नहीं है। इसकी वास्तविक महत्ता इसके प्रचलित समझ से कहीं अधिक गहरी और गूढ़ है। यह, जो कुछ उसे सिद्धांत रूप में समझाया गया है, उसे उसके जीवन और आत्मा का अभिन्न अंग ही बन जाने के समान है। यह शिष्य को सत्गुरु का अपनी ज़िंदगी का उभार देना है, जिससे उसे जीवन स्त्रोत का ज़ाती (निजी) अनुभव मिल जाये। इस प्रकार, दीक्षा के दो पहलू हैं– सैद्धांतिक और व्यावहारिक।

दीक्षा के समय सत्गुरु शिष्य को 'परा–विद्या' या 'अध्यात्म विज्ञान' के सिद्धांतों की जानकारी देता है। यह एक जाना–माना तथ्य है कि सिद्धांत, अभ्यास से पहले आता है, क्योंकि अभ्यास से पहले विषय–वस्तु की सही जानकारी होना महत्त्वपूर्ण रूप से प्रमाणित है। जब तक हमें किसी विज्ञान की सही जानकारी और समझ न हो, उसके सिद्धांतों की सही समझ न हो, हम उनका उचित उपयोग व प्रयोग नहीं कर सकते और सही नतीजों पर नहीं पहुँच सकते।

क्योंकि 'अध्यात्म–ज्ञान', सुरत या आत्मा, जो कि जीवन–सिद्धांत है, 'ज़िंदगी का प्राण' ही है, इसलिए 'आत्म–विद्या' के अनुभवी महापुरुष को चाहिये कि वह प्रत्येक दीक्षित को अपनी जीवन–प्रेरणा का अंशभर जियादान के रूप में दे, जिससे दीक्षित यह जान सके कि 'आत्मिक जीवन' ('Life

of the Spirit') क्या होता है– 'हाड़–माँस के जीवन' ('Life of the flesh'), जो वह अब तक जीता रहा है, से प्रथक्; क्योंकि केवल सुरत या आत्मा ही प्रभु को जान सकती व उसका अनुभव कर सकती है, जब यह शरीर, मन, प्राण और तमाम बहिर्मुखी इंद्रियों– जो ये सभी मिलकर, इंद्रियों के घाट पर, संसार और सांसारिक धन्धों में लगे 'बाहरी इंसान' की संरचना करते हैं– के बंधनों से आज़ाद हो जाये।

जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰749)

'दीक्षा' कौन दे सकता है? :

आत्म–विद्या के रहस्यों में दीक्षित करने के लिये, किसी पूर्ण संत या सत्गुरु की आवश्यकता होती है, जो 'परा–विद्या' अर्थात परलोक के विज्ञान की कला और विज्ञान में सिद्धकौशल हो। जिसने जीते–जी अपनी आत्मा को जिस्मानी क़ैद से आज़ाद करके, उच्चतर आत्मिक मंडलों के अंदर चढ़ाई–रसाई नहीं की, जिसने 'सत्' का प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार नहीं किया और जो आत्मिक अभ्यासों के द्वारा 'सत्' में अभेद नहीं हुआ, वह संभवतः इस संबंध में कुछ भी नहीं कर सकता। सिर्फ़ सर्वोच्च दर्जे का संत ही साधक का सच्चा मार्गदर्शन और उसे प्रभु–प्राप्ति की ओर अग्रसर करा सकता है, आप उसे जो चाहे कह लें– 'संत–सत्गुरु', 'मुर्शिदे–क़ामिल', 'पैग़म्बर', 'मसीहा' या 'महापुरुष'। जैसे ज्योति से ज्योति जगती है, वैसे ही जीवन से जीवन आता है। सिर्फ़ पोथियों का ज्ञान इंसान को ऐसा जियादान नहीं दे सकता।

सतिगुरु देखिआ दीखिआ लीनी।।
मनु तनु अरपिओ अंतर गति कीनी।।
गति मिति पाई आतमु चीनी।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰1, पृ॰227)

पछतावा करो, और तुम में से हर एक अपने–अपने पापों की क्षमा के लिए ईसा मसीह के नाम पर दीक्षित हो जायें,

ताकि तुम्हें 'पवित्र आत्मा' का दान मिल जाए।

— पवित्र बाइबिल (कार्य 2:38)

...जिसने तुम्हें अंधकार में से अपनी अद्‌भुत ज्योति दिखाई, तुम्हें उसके गुणगान करने चाहिएँ।

— पवित्र बाइबिल (I पतरस 2:9)

क्योंकि हम सबने एक ही से एक ही जैसे शरीर में दीक्षा दी है, चाहे हम यहूदी हों अथवा ग़ैर-यहूदी, चाहे हम दास हों अथवा आज़ाद हों; और एक ही आत्मा के परम रस को हमें पिलाया गया है।

— पवित्र बाइबिल (I कुरिन्थियों 12:13)

'परा-विद्या' की शिक्षाओं में 'सुमिरन', 'ध्यान' तथा 'भजन' के अभ्यास शामिल हैं। 'सुमिरन' अर्थात सत्गुरु की शक्ति द्वारा सिद्ध किए नामों को मन ही मन दुहराना; 'ध्यान' अर्थात दोनों भौंहों के बीच ध्यान टिकाना, और 'भजन' अर्थात् सुरत या आत्मा को अंतर में रक्षक जीवन-धारा से जोड़ना, जो सदैव 'शब्द-धारा' के रूप में गूँजती रहती है, जो सारे ब्रह्मांड का जीवन-प्राण है और जिसका सदेह रूप स्वयं जीवित सत्गुरु होता है। ज्योंही कोई शिष्य स्थूल शरीर से ऊपर उठता है, सत्गुरु का दिव्य नूरी स्वरूप ('गुरुदेव') सूक्ष्म मंडल में प्रकट हो जाता है और उच्चतर आत्मिक मंडलों की यात्रा पर आत्मा का मार्गदर्शक बन जाता है और उसे अपने परम पिता परमात्मा के सच्चे घर (सचखंड) ले जाता है। इसके बाद सत्गुरु अपने शिष्य को कभी नहीं छोड़ता, बल्कि लगातार दृश्य या अदृश्य तौर से, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर से, इस लोक में या परलोक में, जैसा भी मौक़ा हो, शिष्य की सहायता व निर्देशन करता रहता है।

देखो? मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ, संसार के आख़िर तक भी।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 28:20)

और जो कोई मेरे पास आएगा, उसे मैं कभी भी नहीं त्यागूंगा।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 6:37)

एवरीमॅन (आम इंसान), मैं तुम्हारा मार्गदर्शक होकर तुम्हारे साथ चलूँगा और जब तुम्हें मेरी सख़्त आवश्यकता होगी, मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा।

— एवरीमॅन (Everyman)

कोई भी इंसान, चाहे वह कितना भी पढ़ा–लिखा क्यों न हो, उसके आदर्श कितने ही ऊँचे क्यों न हों, वह बग़ैर सत्गुरु की कृपा के, सिर्फ़ अपनी निजी कोशिशों से, जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर नहीं आ सकता। जीते–जी आत्मा के खिंच जाने का अनुभव, केवल किसी संत–सत्गुरु की कृपा से ही मिल सकता है, किसी अन्य के द्वारा नहीं; और इस आंतरिक चढ़ाई के बिना आत्मा अगली दुनिया में झाँक नहीं सकती और 'शब्द–धुन' को पकड़ नहीं सकती, जो कि इंसान में बसी 'दिव्य–रज्जु' (रस्सी) और मालिक (सृष्टा) को उसकी सृष्टि से जोड़ने वाली कड़ी है।

धुरि खसमै का हुकमु पइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ।।

— आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार म॰4, पृ॰556)

बग़ैर मेरे भेजे, उस परम पिता के पास कोई नहीं जा सकता।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 14:6)

पिता को कोई मनुष्य नहीं जानता, पुत्र के सिवाय और वो, जिस पर पुत्र उसे (पिता को) प्रकट करना चाहे।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 11:27)

किसी संत–सत्गुरु से अध्यात्म–विद्या की दीक्षा मिलना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इसी में 'परा–विद्या' की सारी शिक्षाओं और रहस्यमयी अनुभवों का राज़ छुपा हुआ है। इसका अर्थ है, एक नया जन्म और नई ज़िंदगी का मिलना, जो बिल्कुल ही नये ढाँचे में ढली हो। यह आत्मिक जन्म या सत्गुरु में जन्म लेना, 'द्विज' या दूसरा जन्म कहा जाता है, जिससे इंसान को एक मौक़ा मिलता है कि वह ज़िंदगी को एक नए सिरे से शुरू करे, बीते दिनों को अलविदा कहे और अपने असली घर– परमपिता के घर की ओर बढ़े–चले, जिसे कि हम युगों–युगों से भूले हुए हैं और जिसे 'नया येरुशालेम', 'पवित्र शहर', 'मुक़ामे–हक़' अथवा 'सचखंड' आदि कहा जाता है।

मैं तुम्हें सच सच कहता हूँ कि जब तक एक इंसान फिर से जन्म नहीं ले लेता, वह प्रभु की बादशाहत में दाख़िल नहीं हो सकता।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:3)

मैं तुम्हें सच-सच कहता हूँ कि जब तक एक इंसान जल और सुरत से जन्म नहीं लेता, तब तक वह प्रभु की बादशाहत में दाख़िल नहीं हो सकता।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:6)

प्रभु की बादशाहत कहाँ है? :

अभी हमारे लिये 'प्रभु की बादशाहत' एक खोये हुए साम्राज्य की तरह से है। प्रभु के हुक्म का पहली बार उल्लंघन करने के फलस्वरूप, जब से इंसान का पतन हुआ, तभी से हमें स्वर्ग के नंदनवन (अदन के बाग़) से निकाल दिया गया है, और वहाँ तक हमारी पैठ नहीं। संसार और सांसारिक धंधों के दबावों से, हम बिल्कुल ही बहिर्मुखी हो गये हैं और प्रभु और उसकी बादशाहत, जो कि अंदर है, उसका हमें कोई विचार ही नहीं आता।

प्रभु की बादशाहत देखने से दिखाई नहीं देती और न ही कोई ऐसा कहेगा कि देखो, वह यहाँ है या वहाँ है, क्योंकि देखो? प्रभु की बादशाहत तुम्हारे अंदर है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 17:20-21)

'अमरत्व का अनमोल जल' इंसान की आत्मा की गहराइयों में दबा पड़ा है। महापुरुषों की पुकार यह है :

जो अपने जीवन को बचाएगा, वह उसे खो देगा, और जो मेरे लिये अपनी ज़िंदगी को खो देगा, वह उसे पा जाएगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 10:39)

मनुष्य का पुत्र खोए हुए को ढूँढने और उन का उद्धार करने के लिए आया है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 19:10)

इन सब बातों का एक ही निष्कर्ष निकलता है कि जीते–जी मौत का अनुभव पाना है, क्योंकि उसके बग़ैर ब्रह्मांडीय चेतनता या परा–ब्रह्मांडीय बोध नहीं पाया जा सकता। आत्मा का यह उच्चतर जीवन एक जीवित सत्गुरु की कृपा पर ही पूर्णतयाः निर्भर है, जो कि हमें ज़िंदगी का उभार (जियादान) देकर उद्धारक 'जीवनधारा' ('शब्द') से जोड़ देने की क्षमता रखता है।

> मैं ईसा के साथ ही सूली चढ़ा दिया गया हूँ, फिर भी मैं जीवित हूँ; परन्तु मैं नहीं, बल्कि ईसा मेरे अंदर रहता है; और जो ज़िंदगी अब मैं जीता हूँ, इस हाड़–माँस के शरीर में, वह अब मैं प्रभु के पुत्र पर निष्ठा के साथ जीता हूँ, जिसने कि मुझे प्यार किया और मेरे लिए अपने आप को ही दे दिया।
>
> – पवित्र बाइबिल (गलातियों 2:20)

दीक्षा और आत्मिक साधना के द्वारा, साधक धीरे–धीरे अपनी ख़ामियों को जान लेता है; और उन्हें दूर करने की कोशिश करता है। जितना अधिक वह अपने आप को पाक–पवित्र करता जाता है, उतना ही वह दिव्य रूहानी ज़िंदगी में आगे बढ़ता चला जाता है। जैसे–जैसे आत्मा के ऊपर पड़े हुए पर्दे उतरने शुरू हो जाते हैं, जीवन का असली मक़सद ज़्यादा से ज़्यादा साफ़ और स्पष्ट होता जाता है। आत्मा धीरे–धीरे सांसारिक बंधनों से मुक्त होती जाती है और स्थूल जिस्म के परे उच्चतर आत्मिक मंडलों में उड़ने लगती है। इस अवस्था के बाद वह इंसान "शरीर के अनुसार नहीं वरन् आत्मा के अनुसार चलता है।" – पवित्र बाइबिल (रोमियों 8:4) इस संसार में रहते हुए भी वह इस संसार का बंदा नहीं रहता। इसके बाद वह उच्चतर आत्मिक मंडलों के परमानंद में मग्न रहता है, न कि इंद्रियों के भोगों–रसों में। 'नाम' या 'शब्द' का उपहार केवल किसी संत–सत्गुरु के पास से ही मिल सकता है, जो अपने जीवन का अंश देकर दीक्षित को आत्मिक यात्रा के लिए तैयार करता है।

लेकिन तरक़्क़ी की गति साधक की अपनी पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है, जिस ज़मीन पर वह खड़ा होता है और पिछले जन्मों में जो कमाई वह कर चुका होता है। क्योंकि प्रत्येक की पृष्ठभूमि अलग होती है, इसलिए प्रत्येक का प्रारंभ बिन्दु भी अलग–अलग होता है। बीज तो बोया जा चुका

है, परन्तु उसका उगना, बढ़ना और विकसित होना उस मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर करता है, जिसमें वह रोपा गया है।

सत्गुरु प्रत्येक दीक्षित के अंदर अपनी जीवनधारा यानी 'ज्योति और ध्वनि' डाल देता है। एक बार उस दिव्य–सूत्र के साथ संपर्क जुड़ जाये और आत्मिक अनुभव मिलना शुरू हो जाये, चाहे प्रारंभ में यह कितना ही कम क्यों न हो, इसे प्रतिदिन के नियमित अभ्यास से निम्न स्तर से किसी भी हद तक बढ़ाया जा सकता है, जब तक कि यह बिल्कुल ही कुदरती और सामान्य न हो जाये यानी जब भी शिष्य चाहे, वो अपनी मन–मर्ज़ी से, जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर आ सके।

गुरमुखि आवै जाइ निसंगु।।

– आदि ग्रंथ (रामकली ओअंकारु, म॰1, पृ॰932)

लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है, खिलने और फलने के लिए हर साधक अपना–अपना वक़्त लेता है। गुप्त आत्मिक शक्तियाँ जीवंत हो उठती हैं और साधक की अपनी आत्मा के अंदर एक क़िस्म की संपूर्णता, संतुष्टि और आशीत होने की अनुभूति होने लगती है। यह एक ऐसा तोहफ़ा है, जो कभी भी समाप्त और नष्ट नहीं होता। यह न तो चोरी हो सकता है और न ही इसे पानी में बहाया जा सकता है। समय पड़ने पर, जो अध्यात्म का बीज आत्मा की गहराइयों में बोया गया है, उसमें अवश्य फूल और फल लगते हैं। दुनिया की कोई भी शक्ति उसके विकास के रास्ते में विघ्न बन कर खड़ी नहीं हो सकती, और न ही उसे किसी प्रकार से रोक सकती है।

जिसे एक बार एक समर्थ सत्गुरु से दीक्षा मिल गई, उसे मन, माया और प्रकृति के बंधनों से सदा के लिए मुक्ति अवश्य मिलेगी, यह सिर्फ़ समय बीतने की बात है। जो बीज उसके अंदर बोया गया है, वह अवश्य ही फलेगा–फूलेगा। एक बार यदि आध्यात्मिक जागृति हो जाये, आत्मिक अनुभव अवश्य ही बढ़ेगा और गुरु–सत्ता तब तक चैन से नहीं बैठेगी, जब तक कि उसका गोद लिया बच्चा बड़ा होकर अपने पितृगृह में वापिस न पहुँच जाये।

दीक्षा के बाद ही सच्चा ज्ञान प्रकट होता है, क्योंकि एक संत–सत्गुरु से दीक्षा लिए बिना किसी को ज्ञान नहीं मिल सकता।

बिनु गुर दीखिआ कैसे गिआनु।।
बिनु पेखे कहु कैसो धिआनु।।
— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1140)

लेकिन जो भाग्यशाली है, उसे संत–सत्गुरु की कृपा से दोनों चीज़ों का अनुभव मिल जाता है। इसका अर्थ है, किसी सत्स्वरूप हस्ती से, जिसके केन्द्र पर प्रभु की शक्ति इस दुनिया में काम कर रही होती है, ज़िंदगी की जीवनदायी सिद्धांत के एक अंश को ग्रहण करना, उसे अपने अंदर जज़्ब करना। इस ज्ञान के द्वारा मन धीरे–धीरे अपनी पकड, जो आत्मा को मज़बूती से जकड़े रहती है, ढीली कर देता है, ताकि सुरत मन की पकड़ से मुक्त हो सके और निज सत्–स्वरूप को जान सके।

जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।।
— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰9, पृ॰684)

एतु मोहि डूबा संसारु।। गुरमुखि कोई उतरै पारि।।
एतु मोहि फिरि जूनी पाहि।। मोहे लागा जम पुरि जाहि।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰356)

इंसानी रूह को मन–इंद्रियों के घाट की भूल–भुलैया से बाहर निकालने का कार्य 'परा–विद्या' के समर्थ ज्ञाता के द्वारा ही सिद्ध हो सकता है, जो सिद्धांत और अभ्यास– दोनों ही में अनुभवी हों। जिसने ख़ुद अपनी आत्मा को मुक्त किया हो और जो, जब चाहे, उच्चतर रूहानी मंडलों में सफ़र कर सकता हो, वही दूसरों को भी मुक्त करके उच्चतर रूहानी मंडलों में ले जा सकता है। यह बड़ी भारी ज़िम्मेदारी और विश्वास का काम है, जिसे तथाकथित सत्गुरुओं, जिनसे दुनिया भरी हुई है, नहीं कर सकते। जो बाहरी यौगिक क्रियाएँ, रीति–रिवाज़ या बलि, व्रत, तपस्या, तीर्थयात्रा आदि का निर्देश देते हैं। वे स्वयं अभी तक अंतरीय रास्ते से अनभिज्ञ हैं, जो कि इंद्रियों के घाट से ऊपर, आत्मा के ठिकाने से शुरू होता है और जिसके लिए जिस्म–जिस्मानियत से सुरत का ऊपर आना प्राथमिक शर्त है। यह वह स्थान है, जहाँ पर दरवाज़ा खटखटाना होता है– जैसा कि ईसा ने वर्णित किया और आश्वासन दिया कि "यह अवश्य ही खोला जायेगा।" – पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:7) दार्शनिक एमर्सन (Emerson) इसे "अंतर की

तरफ़ सुरत की धार को मोड़ना" (tapping inside) कहते हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में 'अपरा–विद्या' या इस दुनिया के ज्ञान के गुरुओं का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

सती पापु करि सतु कमाहि।। गुर दीखिआ घरि देवण जाहि।।
इसतरी पुरखै खटिऐ भाउ।। भावै आवउ भावै जाउ।।
सासतु बेदु न मानै कोइ।। आपो आपै पूजा होइ।।
काजी होइ कै बहै निआइ।। फेरे तसबी करे खुदाइ।।
वढी लै कै हकु गवाए।। जे को पुछै ता पड़ि सुणाए।।

— आदि ग्रंथ (रामकली की वार म॰3, पृ॰951)

हम एक ऐसे भयानक भवसागर में बहे जा रहे हैं, जिसका कोई किनारा नहीं और हम मोह–माया की ज़बरदस्त लहरों के थपेड़े खाकर इधर–उधर भटकते रहते हैं। सत्गुरु का कोई बिरला शिष्य ही जीवन के तूफ़ानों का सफलता पूर्वक मुक़ाबला करके इसके पार सुरक्षित जा सकता है, लेकिन बाक़ी सब बेबस होकर इसमें बहते जाते हैं। यदि दीक्षा लेने के बाद भी यदि दीक्षित सत्गुरु द्वारा बताए गए अभ्यासों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के आत्मिक अभ्यासों में लगा रहता है, तो वह अपने आप को सांसारिक बंधनों से मुक्त नहीं करा सकता और अपने निज–घर पहुँचने में अधिक समय लेता है।

गुर दीखिआ ले जपु तपु कमाहि।। ना मोहु तूटै ना थाइ पाहि।।
नदरि करे ता एहु मोहु जाइ।। नानक हरि सिउ रहै समाइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰356)

सच्ची दीक्षा कुछ और नहीं, बल्कि 'नाम' के साथ संपर्क स्थापित करना है, सृष्टि की रचना करने वाली 'शब्द–धुन' के साथ जुड़ना है, जिसे नियमित अभ्यास के द्वारा सुना जा सकता है, उसका दैनिक रूप से अनुभव और सेवन किया जा सकता है।

तिन्हा मिलिआ गुरु आइ जिन कउ लीखिआ।।
अंमृतु हरि का नाउ देवै दीखिआ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰1, पृ॰729)

साधू की मन ओट गहु उकति सिआनप तिआगु।।
गुर दीखिआ जिह मनि बसै नानक मसतकि भागु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰260)

⌘⌘⌘

अध्याय

: **13** :

ज्ञान

संस्कृत के शब्द 'ज्ञ' से 'ज्ञान' शब्द की उत्पत्ति हुई है, जो अंग्रेज़ी के शब्द, 'know' का पर्याय है। साधारण बोलचाल में ज्ञान का अर्थ बौद्धिक स्तर का ज्ञान समझा जाता है, जिसके अंदर तमाम दर्ज किया या प्राप्त किया गया पुस्तकीय, पुरातन या आधुनिक, आध्यात्मिक या सांसारिक ज्ञान शामिल हैं। निस्संदेह, यह भी एक प्रकार का ज्ञान है और हालाँकि यह प्राथमिक यानी निम्न क़िस्म का है, पर जहाँ तक इसका प्रभाव है, यह बड़ा ही विस्तृत है, विभिन्न प्रकार का है और इसका अपना महत्त्व भी है। इसकी भी हमें आवश्यकता है। इसके एक भाग में, जिसे धर्मग्रंथ कहा जाता है, 'आत्म–विद्या' का सैद्धांतिक वर्णन शामिल है। तमाम धर्मग्रन्थ– वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भागवद्गीता, स्मृति, शास्त्र, पुराण और छः दर्शन; महाकाव्य, जैसे कि रामायण, महाभारत; पवित्र बाइबिल, पवित्र कुरान, आदि ग्रन्थ साहिब और अन्य– सभी ज्ञान की इस शाखा के अंग हैं और 'अपरा–विद्या' अर्थात् जो विद्या इंद्रियों के द्वारा मिले, के अंतर्गत आते हैं। इनमें पुरातन ऋषियों, संतों और अवतारों के आध्यात्मिक अनुभवों का अद्भुत लेखा–जोखा निहित है और इनसे हमें प्रेरणा मिलती है कि हमें भी वैसे ही अनुभवों की प्राप्ति हो। इनमें सदाचार के महान नियम भी दिए गए हैं, जिनसे नैतिक जीवन का मार्ग हमारे सम्मुख प्रशस्त होता है और यदि नियमबद्धता से उनके सिद्धांतों का पालन किया जाये, तो उनसे रूहानियत के भवन की अधिरचना के लिये एक ठोस आधारशिला बन जाती है। यहाँ तक तो ठीक है; परन्तु इससे आगे वे (धर्मग्रंथ) किसी काम के नहीं।

'अपरा–विद्या' या सोचने और लिखने के स्तर के ज्ञान के अलावा, एक सूक्ष्मतर और उच्चतर प्रकार का ज्ञान भी है, जिसकी प्राप्ति परा–मानसिक स्तर पर होती है। यह साधारण इंद्रियजनित ज्ञान से भिन्न और स्वतंत्र है,

क्योंकि यह अंतर्ज्ञान है और आत्मा के प्रत्यक्ष अनुभव से ता'ल्लुक रखता है। इसलिये इसे 'परा–विद्या' कहा जाता है, यानी 'परे की विद्या'। तमाम धर्मों में इसी को सच्चा ज्ञान कहा गया है। यह सुरत या आत्मा द्वारा अपने आप को चीन्हनने से प्राप्त होता है। यह आत्म–निरीक्षण का परिणाम है, जो नियमित अंतर्मुखता या अंतर में झाँकने के अभ्यास से हासिल होता है। यह अपने अंतरतम में वास्तविक अनुभव तथा बोध की वस्तु है और यह धीरे–धीरे 'आत्म–ज्ञान' और 'प्रभु–ज्ञान' की ओर ले जाती है। जब 'आत्म–ज्ञान' की ज्योति प्रज्ज्वलित होती है, सभी संशय और भेदभाव नष्ट हो जाते हैं और व्यक्ति सारे संसार को अलग नज़र से देखने लग जाता है, जैसे कि एक आदमी पहाड़ी की चोटी पर खड़ा हो और आसपास और नीचे के अंतहीन लहरदार शृंखलाओं के परिदृष्यों के पसारे को देख सकता हो। वह स्वयं को सृष्टि के रंगबिरंगे रूपों की महान चित्रावली की ओर देखते हुए पाता है, जो कि सृष्टि के सृजन का एक केन्द्र हो। भूत, भविष्य और वर्तमान उसके सामने खुली किताब के पन्नों की भांति खुलते चले जाते हैं, और ऐसा कुछ नहीं रह जाता, जिसका कि उसे ज्ञान न हो और न ही वह अपने अंदर ज्ञान का अभाव महसूस करता है।

इसके पश्चात् उसे इस महान प्रश्न का उत्तर मिल जाता है कि "ऐसा कौन सा ज्ञान है, जिसके जानने से सब कुछ जाना हुआ सा हो जाता है, "जिसको, जब से दुनिया बनी, तभी से इंसान पूछता आया है। तो सच्चा ज्ञान, उस 'परम सत्य' को जानना और अनुभव करना है, जिसकी जीवन–ज्योति के अंदर हम अनजान होकर से घूमते–फिरते हैं, जो हमारा जीवन आधार है, पर जिसे हम जानते तक नहीं। यह भाग्य की महान विडंबना ही है कि हम संसार और अपने सांसारिक वातावरण के बारे ज़रूरत से कहीं अधिक जानते हैं; लेकिन उस जीवन तत्त्व के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते, जिसे 'आत्मा' कहा जाता है, जो कि हमें अनुप्राणित करने वाली चेतनता की चिंगारी है और हमारा अपना आपा है, हमारा सच्चा आपा है।

इस तरह, 'अपरा' और 'परा–विद्या' में बड़ा भारी अंतर है। समय के साथ 'अपरा– विद्या' फैलती जाती है, परन्तु इससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं। कवि टेनिसन (Tennyson) इसका उपयुक्त रूप सें वर्णन करते हैं :

सभी अनुभव एक मेहराब की भाँति है, जिसके भीतर वह अनदेखी दुनिया मौजूद है, जिसका वजूद, जब भी मैं हिलता हूँ, सदा-सदा के लिए गुम हो जाता है।

यह एक क़िस्म का बीयाबान है, जिसमें से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं। अपनी तमाम अक़्ल के बावजूद, व्यक्ति इसकी भूल–भुलैया में ही खो ही जाता है। एक कोड़े मारे गए घोड़े की भाँति, वह बुरी तरह थककर अपने आप को नष्ट कर सकता है, परन्तु संभवतः इसमें से बाहर नहीं निकल सकता। ऐसे ही भयंकर मार्ग पर हम सभी चलते हैं।

दूसरी ओर, 'परा–विद्या' के भीतर असीम संभावनाएँ हैं, और ज्यों–ज्यों तीर्थयात्री आत्मा अपने पथ पर आगे बढ़ती है, नये–नये, भव्य दिव्य–मंडल उभर कर सामने आने लगते हैं। यह बड़ी रमणीय यात्रा है, क्योंकि यात्री (आत्मा) के साथ एक पक्का साथी और कभी न चूकने वाला मार्गदर्शक होता है, जिसे रास्ते की जानकारी है, जिसके ख़तरों, मोड़ों और अवरोधों से वह भली भाँति परिचित है। वह उसे अपने साथ सुरक्षापूर्वक ले जाता है, विशेषकर सुंदर दृश्यों को दिखाते हुए और मार्ग की सभी वस्तुओं से उसे अवगत कराते हुए। उसके साथी (सत्गुरु) का मुस्कराता हुआ नूरानी मुखड़ा है, जिससे दैवी शान टपकती है और वह उसे 'परा–विद्या' का प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान करता है, जिसके बारे में उस तीर्थयात्री ने केवल पुस्तकों में ही पढ़ा होगा। अपने तमाम धोखों, छलावों और फिसलनों के होते हुए भी, यह मार्ग एक असाधारण वैभवशाली है और चैन और विश्रांति से भरपूर स्थल की ओर ले जाता है। यात्रा का अंत कहीं और नहीं, बल्कि 'प्रभु की बादशाहत' में है, जहाँ पर शांति और ख़ामोशी का साम्राज्य है, जिसे 'नया येरुशालेम' या 'पवित्र शहर' कहा जाता है। इस तरह, असली ज्ञान केवल अनुभव किये गये 'सत्' से ही संबंधित है।

श्रीमद्भगवद्गीता में हमारा दो शब्दों से पाला पड़ता है— ज्ञान और विज्ञान। यहाँ 'ज्ञान' का अर्थ है, उस एक जीवन–तत्त्व का ज्ञान, जिसे कि परमात्मा कहा जाता है, जो उन समस्त अनेक बुलबुलों की भाँति बनते और मिटते रहते जीवित प्राणियों में क्रियाशील है; और इस बात का अनुभव होना कि यही जीवन–तत्त्व तमाम विद्यमान वस्तुओं का उपादान तथा दक्ष कारण है, 'विज्ञान' कहा जाता है। जो व्यक्ति 'ज्ञान' या 'विज्ञान' से संपन्न

है, वह सृष्टि में परमात्मा के अतिरिक्त कुछ और देखता ही नहीं, और सृष्टि को परमात्मा में स्थापित– अर्थात् दोनों को एक ही रूप में, न कि अलग अलग– कि प्रभु इंसान के अंदर है और इंसान प्रभु के– जो कि धर्म के सर्वेश्वरवादात्मक (pantheistic) दृष्टिकोण के सदृश है।

गुरुवाणी (गुरुओं के ग्रन्थ) में किताबी ज्ञान को कहीं भी 'ज्ञान' नहीं माना गया है। इसके विपरीत, 'शब्द–धुन' को ही ज्ञान की संज्ञा दी गई है (जैसा 'शब्द', 'नाम', 'सच', 'कीर्तन', 'धुनि' आदि पर्यायों से स्पष्ट है), जो लगातार प्रत्येक व्यक्ति के अंदर पूर्णतया गूँजती रहती है।

गिआनु धिआनु गुर सबदु है मीठा।।
गुर किरपा ते किनै विरलै चखि डीठा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी बैरागनि म॰3, पृ॰162)

गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ अकथु कहावै सोइ।।
सफलिओ बिरखु हरीआवला छाव घणेरी होइ।।
लाल जवेहर माणकी गुर भंडारै सोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰59)

मन और बुद्धि के स्तर पर भी हमें ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है, और वह हमें धर्मग्रन्थों और सत्गुरुओं के सत्संगों से मिलता है। अध्यात्म का अभ्यास हम तब तक नहीं कर सकते, जब तक हम इसे सैद्धांतिक तौर से जान न लें कि रूहानियत क्या है, इसकी तकनीक क्या है, इसका अभ्यास कैसे किया जा सकता है, इसके रास्ते में क्या रुकावटें हैं और कैसे उन्हें पार किया जा सकता है, आदि–आदि। इसलिये हम 'परा–विद्या' के सैद्धांतिक पक्ष को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञान के हर विभाग में सिद्धांत अनुभव से पहले आता है। परन्तु, सिद्धांत सीखने के बाद हमें चाहिये कि सैद्धांतिक ज्ञान को हम अपने जीवन में उतारें, ताकि हम उसका अनुभव भी पा सकें। सिर्फ़ सिद्धांत के जान लेने से हम आत्मा की सहज अभिलाषा को पूरा नहीं कर सकते, जिसे अपनी भूख मिटाने के लिए 'दिव्य अन्न' या 'ज़िंदगी की रोटी' चाहिए और अपनी प्यास बुझाने के लिए 'ज़िंदगी का पानी' चाहिए। इसीलिये सिद्धांत और उसके अभ्यास का चोली–दामन का साथ है और वे पारस्परिक रूप से निर्भर हैं। लेकिन

लक्ष्य को पाने के लिये परिश्रम करना होता है, जिसमें सबसे पहले मन और बुद्धि को शांत करना होता है। सिद्धांत को समझ लेने के बाद, केवल उसका अभ्यास करने के सिवाय और कुछ करना नहीं बचता। वह अभ्यास मन, बुद्धि और इंद्रियों के स्तर से बहुत ऊपर, आत्मा के स्तर पर किया जाता है। इसके लिए आत्म– विश्लेषण या अंतर्मुख होने की प्रक्रिया द्वारा आत्मा को जिस्म से अलग किया जाता है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव सत्गुरु, शरीर रूपी प्रयोगशाला के अंदर ही दीक्षा के समय शिष्य को दे देते हैं।

गुर गिआनु पदारथु नामु है हरि नामो देइ दृडाइ।।
जिसु परापति सो लहै गुर चरणी लागै आइ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰ 4, पृ॰759)

गिआनु धिआनु सचु गहिर गंभीरा।। कोइ न जाणै तेरा चीरा।।

— आदि ग्रंथ (मारू सोलहे म॰ 1, पृ॰1034)

एको गिआनु धिआनु धुनि बाणी।। एकु निरालमु अकथ कहाणी।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰1, पृ॰1188)

चीनै गिआनु धिआनु धनु साचौ एक सबदि लिव लावै।।
निरालंबु निरहारु निहकेवलु निरभउ ताड़ी लावै।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰1, पृ॰1332)

तीरथि नावण जाउ तीरथु नामु है।।
तीरथु सबद बीचारु अंतरि गिआनु है।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰1, पृ॰687)

गुर गिआन अंजनु सचु नेत्री पाइआ।।
अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰124)

भइओ प्रगासु सरब उजीआरा गुर गिआनु मनहि प्रगटाइओ।।
अंमृतु नामु पीओ मनु तृपतिआ अनभै ठहराइओ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰209)

उपजिओ गिआनु हूआ परगास।। करि किरपा लीने कीट दास।।

— आदि ग्रंथ (गोंड भगत रविदास, पृ॰875)

यह ज्ञान स्वज्योतिर्मय है। जब यह प्रकट होता है, तो दीक्षित की आत्मा में शाश्वत ज्योति प्रकट हो जाती है। इसके पश्चात् वह सदैव प्रभु की कृपा भरी 'ज्योति' से भरपूर रहता है, और जहाँ कहीं वह जाता है वह 'ज्योति' उसके साथ जाती है। यही सच्ची भक्ति है और साधक को तमाम हानियों से पूर्ण सुरक्षा प्रदान करती है।

धर्मग्रन्थ हमें बतलाते हैं कि ज्ञान से परिपूर्ण 'ज्योति' है। गुरु अमरदास, सत्गुरुओं की विद्या के अनुसार, ज्ञान के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि ज्ञान 'अमर ज्योति' का अंतर में प्रकट होना है, जो साधक को अखंड भक्ति में तल्लीन रखने वाली वेदी बन जाती है, और 'नाम' का पूरा फल प्रदान करती है :

सतिगुर गिआनु सदा घटि चानणु अमरु सिरि बादिसाहा।।
अनदिनु भगति करहि दिनु राती राम नामु सचु लाहा।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰ 3, पृ॰600)

वे आगे कहते हैं :

गुरमुखि सबदु पछाणीऐ हरि अंमृत नामि समाइ।।
गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ अगिआनु अंधेरा जाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी म॰ 3, पृ॰29)

सतसंगति मिलीऐ हरि साधू मिलि संगति हरि गुण गाइ।।
गिआन रतनु बलिआ घटि चानणु अगिआनु अंधेरा जाइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰ 4, पृ॰368)

हरि हरि नामु जपिआ दुखु बिनसिआ हरि नामु परम सुखु पाइआ।।
सतिगुर गिआनु बलिआ घटि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰ 4, पृ॰444)

जिन मसतकि धुरि हरि लिखिआ तिना सतिगुरु मिलिआ राम राजे।।
अगिआनु अंधेरा कटिआ गुर गिआनु घटि बलिआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰450)

गुरु अर्जन भी हमें बताते हैं कि अंतर में गुरु का ज्ञान उदय होने पर दिव्य-ज्योति अंदर व बाहर प्रकट हो जाती है, जो सब को अपने आप में समेट लेती है, मन संतुष्ट हो जाता है और सभी भ्रम और शंकाओं से मुक्त

हो जाता है। इस तरह से साधक अमरत्व के जीवन के जल के चिरकालीन स्रोत तक पहुँच जाता है, जिसे पीकर वह इच्छारहित हो जाता है और मौत के भय से मुक्त होकर 'अमर जीवन' पा जाता है।

भइओ प्रगासु सरब उजीआरा गुर गिआनु मनहि प्रगटाइओ।।
अंमृतु नामु पीओ मनु तृपतिआ अनभै ठहराइओ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰209)

आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ चढ़ने पर, साधक को सितारे, चाँद और सूरज की ज्योतियों में से गुज़रना पड़ता है। सच्चा ज्ञान तभी मिलता है, जब सुरत 'सुखमनि' ('सुषुम्ना') अथवा 'शाह–रग' (दो भौंहों के बीच एक तंग गली) में से गुज़रती है।

आंतरिक चन्द्र और सूर्य की ज्योति का अभिवादन करते हुए, जब आत्मा सूक्ष्म संसार में चढ़ती है, धर्मग्रंथों में इसे सच्चे ज्ञान का मार्ग कहा गया है।

भीतरि अगनि बनासपति मउली सागरु पंडै पाइआ।।
चंदु सूरजु दुइ घर ही भीतरि ऐसा गिआनु न पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (बंसत हिंडोल म॰ 1, पृ॰1171)

जपजी के पद 35-36 में गुरु नानक ज्ञानखंड का, जिसमें अनगिनत देवी–देवता मौजूद हैं, ख़ूबसूरती से वर्णन करते हुए बतलाते हैं :

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु।।
तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु।।

— आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 35-36, पृ॰7)

अलौकिक ज्योति, अंतर और बाहर, सदा एक अचूक मित्र की भाँति भीषण विपत्तियों के क्षणों में हमारी मदद करती है और साधक स्थिरता से इसमें अग्रसर होता जाता है, इस जीवन में और इसके बाद भी। सुखमनी साहिब में गुरु अर्जन साहिब ने एक पूरी अष्टपदी (आठ पदों वाली प्रार्थना) इस 'ज्योति' के लिये समर्पित की है कि किस तरह से यह 'ज्योति' आत्मा के पथ को प्रदीप्त करके मार्गदर्शन करती है, जब यह शरीर को त्यागती है। सुखमन नाड़ी में 'ज्योति' तो है ही; परन्तु, बग़ैर किसी सत्गुरु की सहायता के, उस तक पहुँचा नहीं जा सकता :

अंतरि बाहरि संगि सहाई गिआन जोगु।।
तिसहि अराधि मना बिनासै सगल रोगु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰398)

अंतरि गुर गिआनु हरि रतनु है मुकति करावणहारा।।
नानक जिस नो नदरि करे सो पाए सो होवै दरि सचिआरा।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस की वार म॰ 4, पृ॰593)

गिआन रतनु मनि परगटु भइआ।। नामु पदारथु सहजे लइआ।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰4, पृ॰1069)

गुडु करि गिआनु धिआनु करि महूआ भउ भाठी मन धारा।।
सुखमन नारी सहज समानी पीवै पीवनहारा।।

— आदि ग्रंथ (रामकली भगत कबीर, पृ॰969)

सत्गुरु 'सदेह–ज्ञान' है और किसी बिरले गुरुमुख को ही वह यह ज्ञान देता है अर्थात् वह शिष्य, जो पूरी तरह से सत्गुरु को समर्पित हो। सत्गुरु अंतर में इस 'ज्योति' को प्रकट कर सकते हैं, जो कि निर्वाणदायिनी है। यह एक आंतरिक विज्ञान है और इसके लिए किसी पूरे सत्गुरु की छत्रछाया में कार्यरत हुआ जा सकता है; बग़ैर उसके इसे किसी ने भी नहीं पाया है।

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ।।
पूछहु ब्रहमे नारदै बेद बिआसै कोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰59)

कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ।।
गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰ 1, पृ॰469)

माई गुर बिनु गिआनु न पाईऐ।।
अनिक प्रकार फिरत बिललाते मिलत नही गोसाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰ 5, पृ॰532)

बिनु गुर किनै न पाइओ हरि नामु हरि सते।।
ततु गिआनु वीचारिआ हरि जपि हरि गते।।

— आदि ग्रंथ (मारू की वार म॰3, पृ॰1093)

गुर बिनु गिआनु न होवई ना सुखु वसै मनि आइ।।
नानक नाम विहूणे मनमुखी जासनि जनमु गवाइ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰ 4, पृ॰650)

सतिगुर विटहु वारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ।।
जिनि करि उपदेसु गिआन अंजनु दीआ इन्ही नेत्री जगतु निहालिआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰ 1, पृ॰470)

गिआन अंजनु सतिगुर ते होइ।।
राम नामु रवि रहिआ तिहु लोइ।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰ 3, पृ॰1130)

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु।।
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰293)

महा दानि सतिगुर गिआनि मनि चाउ न हुटै।।
सतिवंतु हरि नामु मंत्रु नव निधि न निखुटै।।

— आदि ग्रंथ (सवईए म॰5, पृ॰1407)

जब आध्यात्मिक साधनाओं (जैसे सुमिरन, ध्यान आदि) के द्वारा मन शांत स्थिर हो जाता है, तब आंतरिक ज्ञान प्रकट होता है। संसार में ऐसी ज्ञान प्राप्ति आत्माएँ बिरली ही होती हैं। वे सभी व्यक्ति, जो अहंकार, क्रोध, काम आदि से भरे हैं– जैसे कि हममें से अधिकतर हैं– वे उसे नहीं पा सकते। ज्ञान के प्रकट होने से संपूर्ण संतुष्टि आ जाती है; मन नियंत्रण में आ जाता है और आत्मा युगों–युगों की नींद से जाग जाती है। तमाम इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं; साधक अपने आप ही में तल्लीन रहता है, सर्वव्यापी 'पूर्व–ज्ञान' और 'परा–ज्ञान' के उपहार को प्राप्त कर लेता है और ब्रह्मांडीय चेतनता में जाग जाता है। तमाम कर्म भस्म हो जाते हैं। मानवता की अंतिम दुश्मन– मौत का भय समाप्त हो जाता है, और ऐसी जीवनमुक्त आत्माओं के निकट यमदूत आ नहीं सकते। ये सब लाभ बौद्धिक क्रीड़ा के द्वारा प्राप्त नहीं किये जा सकते।

अंतर में प्रभु की कृपालु ज्योति के प्रकट हो जाने से आत्मा परमात्मा के दरबार में स्वीकृत हो जाती है।

मनु बैरागी घरि वसै सच भै राता होइ।।
गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न होइ।।
नानक इहु मनु मारि मिलु भी फिरि दुख न होइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰21)

जलि मलि काइआ माजीऐ भाई भी मैला तनु होइ।।
गिआनि महारसि नाईऐ भाई मनु तनु निरमलु होइ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰1, पृ॰637)

गिआन अंजनु भै भंजना देखु निरंजन भाइ।।
गुपतु प्रगटु सभ जाणीऐ जे मनु राखै ठाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰57)

सचा नेहु न तुटई जे सतिगुरु भेटै सोइ।।
गिआन पदारथु पाईऐ तृभवण सोझी होइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰60)

ऐसे गिआन प्रगटिआ पुरखोतम कहु कबीर रंगि राता।।
अउर दुनी सभ भरमि भुलानी मनु राम रसाइन माता।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग भगत कबीर, पृ॰92)

इहु मनूआ किउ करि वसि आवै।।
गुर परसादी ठाकीऐ गिआन मती घरि आवै।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰426)

फल कारन फूली बनराइ।। फलु लागा तब फूलु बिलाइ।।
गिआनै कारन करम अभिआसु।। गिआनु भइआ तह करमह नासु।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ भगत रविदास, पृ॰1167)

कहत नानक जनु जागै सोइ।।
गिआन अंजनु जा की नेत्री होइ।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰ 3, पृ॰1128)

गिआन अपारु सीगारु है सोभावंती नारि।।
सा सभराई सुंदरी पिर कै हेति पिआरि।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰426)

सत्गुरु रूपी महावतज्ञान रूपी अंकुश के द्वारा इस मनरूपी जंगली हाथी को क़ाबू करके उसे पालतू बना देते हैं। सत्गुरु की ज्योति, जिसे 'शब्द', 'नाम', 'धुनि', 'नाद' आदि नामों से पुकारा जाता है, आत्मा और प्रभु को जोड़ने वाली कड़ी है और एक बार यदि उसे दृढ़ता से पकड़ लिया जाये, तो साधक आसानी से प्रभु के महल में दाख़िल हो सकता है।

> तुम ने पुराने इंसान के जामे को उसके कर्मों समेत त्याग दिया है और नये इंसान का जामा पहन लिया है, जो कि ज्ञान में अपने सृष्टा के अनुरूप ही है।
>
> — पवित्र बाइबिल (कुलुस्सियों 3:910)

जो माध्यम हमारी प्रकृति व स्वभाव को नया रूप प्रदान करता है, वह 'पवित्र आत्मा' ('Holy Spirit') या 'शब्द' है। जो अनुभव वह हमें देता है, वह एक नया जन्म या पुनर्जन्म है।

> यदि कोई आदमी मसीह में निवास करे, तो वह एक नया इंसान हो जायेगा; पुरानी चीज़ें बदल रही हैं; देखो, सभी चीज़ें नई हो गई हैं।
>
> — पवित्र बाइबिल (II कुरिन्थियों 5:17)

'ज्ञान' या प्रबोधन प्रभु की ओर से भेंट के तौर पर मिलता है।

जां तुधु भावे ता दुरमति जाइ।। गिआन रतनु मनि वसै आइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰354)

गिआनु न गलीई ढूढीऐ कथना करड़ा सारु।।
करमि मिलै ता पाईऐ होर हिकमति हुकमु खुआरु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰465)

अंतरि गुर गिआनु हरि रतनु है मुकति करावणहारा।।
नानक जिस नो नदरि करे सो पाए सो होवै दरि सचिआरा।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस की वार म॰ 4, पृ॰593)

जिना सतिगुर सिउ चितु लाइआ से पूरे परधान।।
जिन कउ आपि दइआलु होइ तिन उपजै मनि गिआनु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰45)

दिव्य–ज्ञान' या 'दिव्य अनुभव' जिसे उपहारस्वरूप मिल जाता है, उसे चाहिये कि वह उसे रोज़ाना अभ्यास के द्वारा उसे आगे बढ़ाये, ताकि ऐसा न हो कि संसार सागर के भँवरों में बह जाने से, वह स्वर्ग की 'पवित्र–ज्योति' कहीं खो जाये। ईसा मसीह बड़े स्पष्ट शब्दों में हमें इस ख़तरे से आगाह करते हैं कि प्रभु और उसके प्रतिनिधि, सत्गुरु की दी हुई अनमोल दात कहीं खो न जाये। वे कहते हैं :

> ध्यान रहे, तुम्हारे अंदर की ज्योति पर कहीं स्याही का पर्दा न छा जाये।
>
> — पवित्र बाइबिल (लूका 11:35)

❁❁❁

अध्याय

: **14** :

चरण-कमल

बहुधा हमें विभिन्न धर्म–ग्रंथों में 'चरण–कमल' के संदर्भ मिलते हैं।

सुणि मन भूले बावरे गुर की चरणी लागु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰57)

गुर के चरन हिरदै वसाए।। मन चिंतत सगले फल पाए।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰395)

सुसमाचारों में भी हमें ऐसे संदर्भ मिलते हैं कि मसीह के पैरों को तेल मला गया और उन्हें चूमा गया। हिंदू और मुसलमानों में भी पवित्र–पाक दरवेशों और महापुरुषों के पैरों को छूकर सम्मान प्रकट करने की रस्म है। आइये, हम समझने की कोशिश करें कि इन आदेशों तथा प्रथाओं के महत्त्व या अभिप्राय का क्या महत्त्व है।

'अध्यात्म विज्ञान' में जीवित सत्गुरु का होना अत्यंत अनिवार्य है। वह वो केन्द्रीय धुरी है, जिसके इर्द–गिर्द यह समस्त साधना प्रणाली घूमती है। वह वो इंसानी स्तंभ है, जिसके माध्यम प्रभु की शक्ति इस संसार में कार्यरत रहती है। उसकी मदद और मार्गदर्शन के बग़ैर, कोई कुछ भी हासिल नहीं कर सकता। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि साधक को सत्गुरु के 'चरण–कमलों' में आत्म–समर्पण करना होता है। क्योंकि कमल के पुष्प को उत्कृष्ट और पवित्र माना जाता है, अतः सत्गुरु के चरणों, जो पूर्ण श्रद्धा और नम्रता से पूजने के योग्य हैं, के लिए अक्सर 'चरण–कमल' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

बिनु गुर दाते कोइ न पाए।। लख कोटी जे करम कमाए।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1057)

सभि सिआणपा छडि कै गुर की चरणी पाहु।।
साधू की होहु रेणुका अपणा आपु तिआगि।।
उपाव सिआणप सगल छडि गुर की चरणी लागु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰44-45)

उकति सिआणप सगली तिआगु।।
संत जना की चरणी लागु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰ 5, पृ॰177)

सुणि मन भूले बावरे गुर की चरणी लागु।।
हरि जपि नामु धिआइ तू जमु डरपै दुख भागु।।
दूखु घणो दोहागणी किउ थिरु रहै सुहागु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰57)

नामु निधानु धिआईऐ मसतकि होवै भागु।।
कारज सभि सवारीअहि गुर की चरणी लागु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰47)

सोई धिआईऐ जीआड़े सिरि साहां पातिसाहु।।
तिस ही की करि आस मन जिस का सभसु वेसाहु।।
सभि सिआणपा छडि कै गुर की चरणी पाहु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰44)

मन रे राम जपहु सुख होई।।
अहिनिसि गुर के चरन सरेवहु हरि दाता भुगता सोई।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰1, पृ॰598)

गुरु अर्जन के निम्न उपदेशों से स्पष्ट है कि वे चाहते हैं कि हम जीवित सत्गुरु को पायें और अपने आप को उनको समर्पित कर दें, उनकी संगति और क़रीबी का लाभ उठायें और अपने जीवन और चाल-चलन को उसी के अनुसार ढालें, क्योंकि इसी में ही आध्यात्मिक सफलता का रहस्य छिपा है। इस संदर्भ में 'सत्गुरु के चरणों से लगने' का अर्थ है कि हम किसी सत्गुरु से मिलें और उसकी छत्रछाया में रह कर अपना आत्मिक विकास करें।

तजि अभिमानु जनम मरणु निवारहु।।
हरि के दास के चरण नमसकारहु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰191)

मेरे मन हरि हरि नामु धिआइ।।
करि संगति नित साध की गुर चरणी चितु लाइ।।
— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰47)

धनु सु वेला जितु दरसनु करणा।।
हउ बलिहारी सतिगुर चरणा।।
— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰562)

पेखि पेखि जीवा दरसु तुम्हारा।।
चरण कमल जाई बलिहारा।।
तुझ बिनु ठाकुर कवनु हमारा।।
— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰743)

गुर का दरसनु देखि देखि जीवा।।
गुर के चरण धोइ धोइ पीवा।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰239)

सिमरि सिमरि सिमरि नामु जीवा तनु मनु होइ निहाला।।
चरण कमल तेरे धोइ धोइ पीवा मेरे सतिगुर दीन दइआला।।
कुरबाणु जाई उसु वेला सुहावी जितु तुमरै दुआरै आइआ।।
नानक कउ प्रभ भए कृपाला सतिगुरु पूरा पाइआ।।
— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰749)

'सत्गुरु के चरणों' को आम तौर पर 'पवित्र अमृत का तालाब' कहा जाता है, जो संसार से थके प्रभु के रास्ते लगे तीर्थयात्रियों को मुक्ति प्रदान करता है।

संत जनहु सुणि भाईहो छूटनु साचै नाइ।।
गुर के चरण सरेवणे तीरथ हरि का नाउ।।
आगै दरगहि मंनीअहि मिलै निथावे थाउ।।
— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰52)

'सत्गुरु के चरणों' में बड़ी निराली और विशिष्ट मिठास है और उन से अवर्णनीय वरदान निकलते हैं।

माई चरन गुर मीठे।।
वडै भागि देवै परमेसरु कोटि फला दरसन गुर डीठे।।
— आदि ग्रंथ (टोड़ी म॰5, पृ॰717)

सत्गुरु के 'चरण–कमलों' को धोने से प्राप्त जल अर्थात 'चरणामृत' 'अमृत' माना जाता है और उसे पीने से शाश्वत जीवन प्राप्त होता है। किसी जीवित सत्गुरु से मिलना कोई सहज काम नहीं है। सत्गुरु के सन्निकट आने वाला और उसे पहचान लेने वाला इंसान वास्तव में धन्य है।

कहु नानक जे होवी भागु।। मानु छोडि गुर चरणी लागु।।
कहु नानक ता के पूर करंमा जा का गुर चरनी मनु लागा।।
कहु नानक भला मेरा करम।। जितु भेटे साधू के चरन।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰ 372; सोरठ म॰5, पृ॰ 614; गउड़ी म॰5, पृ॰191)

प्रभु की कृपा से ही ऐसा होता है कि इंसान किसी जीवित सत्गुरु से मिलता है और उनके 'चरण–कमलों' की भक्ति करता है।

प्रभि बाँह पकराई ऊतम मति पाई गुर चरणी जनु लागा।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰446)

जिसु कृपा करे प्रभु आपणी तिसु सतिगुर के चरण धोइआ।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰309)

कीनी दइआ गोपाल गुसाई।। गुर के चरण वसे मन माही।।
— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰107)

वह दिन शुभ है जब व्यक्ति 'सत्गुरु के चरणों' की सेवा में लगता है और नम्रता में आकर सत्गुरु के 'चरण–कमलों' में प्रणाम करता है और अपनी दाढ़ी और मस्तक से छूता है।

नेत्र पुनीत पेखत ही दरस।।
धनि मसतक चरन कमल ही परस।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰201)

चचा चरन कमल गुर लागा।।
धनि धनि उआ दिन संजोग सभागा।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰254)

से दाड़ीआँ सचीआ जि गुर चरनी लगंन्हि।।
— आदि ग्रंथ (सलोक वारां ते वधीक, म॰3, पृ॰1419)

इस संदर्भ में भाई गुरदास कहते हैं :

चिरंकाल मानस जनम निरमोल पाए,
सफल जनम गुर चरन सरन कै।।
लोचन अमोल गुर दरस अमोल देखे,
स्रवन अमोल गुर बचन धारन कै।।
नासिका अमोल चरनारबिंद बासना कै,
रसना अमोल गुर मंत्र सुमिरण कै।।
हसत अमोल गुरदेव सेव सफल कै,
चरन अमोल परदच्छना करन कै।।

— भाई गुरदास, कबित्त–सवैये (17)

चरन सरनि गुर तीरथ पुरब कोटि
देवी देव सेव गुरु चरनि सरनि है।।
चरन सरनि गुर कामना सफल फल,
रिधि सिधि निधि अवतार अमरन है।।
चरन सरनि गुर नाम निहकाम धाम,
भगति जुगति करि तारन तरन है।।
चरन सरन गुर महिमा अगाधि बोधि,
हरन भरन गति कारन करन है।।

— भाई गुरदास, कबित्त–सवैये (72)

जब ते परम गुर चरन सरनि आए,
चरन सरनि लिव सकल संसार है।।
चरन कमल मकरंद चरणामृत कै,
चाहत चरन रेनु सकल आकार है।।
चरन कमल सुख संपट सहज घरि,
निहचल मति परमारथ बीचार है।।
चरन कमल गुरु महिमा अगाध बोधि,
नेति नेति नमो नमो कै नमसकार है।।

— भाई गुरदास, कबित्त–सवैये (217)

एक जीवित सत्गुरु का होना एक बड़ी नेमत और वरदान है। धर्मग्रंथों में हमें अनंत लाभों का वर्णन मिलता है, जो सत्गुरु के 'चरण–कमलों' से हासिल होते हैं। सत्गुरु हमारे सभी दुखों और मुसीबतों को

नष्ट कर देता है। सभी घातक कामनाएँ, मनोविकार, मोह व इच्छा रूपी पाप नष्ट हो जाते हैं। मन और तन पवित्र हो जाते हैं। सभी बंधनों से मुक्त होकर, जीवन के अपने बहाव को स्वीकार करते हुए, व्यक्ति सहज रूप से जीता है, स्वच्छंद और निडर होकर जीवन व्यतीत करता है। वह मृत्यु के भय से भी पार हो जाता है, क्योंकि उसे ज्ञात है कि मौत का मुक़ाबला कैसे किया जा सकता है। 'नाम' की शक्ति के साथ, वह पूरी संतुष्टि और आनंद का जीवन जीता है और ब्रह्मांडीय चेतनता में जाग जाता है, और उसके बाद, जीवन भर आत्मा के स्तर पर जीता है। यही जीवनमुक्ति या जीते–जी मुक्त होना है।

साचे सतिगुर दातारा।
दरसनु देखि सगल दुख नासहि चरन कमल बलिहारा।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1221)

धनु सु वेला जितु दरसनु करणा।।
हउ बलिहारी सतिगुर चरणा।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰562)

हउ बलिहारी सतिगुर चरणा।। गुर बोहिथु सबदि भै तरणा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰413)

लख खुसीआ पातिसाहीआ जे सतिगुरु नदरि करेइ।।
निमख एक हरि नामु देइ मेरा मनु तनु सीतलु होइ।।
जिस कउ पूरबि लिखिआ तिनि सतिगुर चरन गहे।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰44)

ऊठत बैठत हरि गुण गावै दूखु दरदु भ्रमु भागा।।
कहु नानक ता के पूर करंमा जा का गुर चरनी मनु लागा।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰614)

सगल पदारथ तिसु मिले जिनि गुरु डीठा जाइ।।
गुर चरणी जिन मनु लगा से वडभागी माइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰49)

कहु नानक जे होवी भागु।। मानु छोडि गुर चरणी लागु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰372)

सतिगुरि राखे से वडभागे।। नानक गुर की चरणी लागे।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰414)

जैसा बीजे सो लुणै जेहा पुरबि किनै बोइआ।।
जिसु कृपा करे प्रभु आपणी तिसु सतिगुर के चरण धोइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰309)

सत्गुरू के 'चरण-कमलों' के आंतरिक दर्शन :

जीवित सत्गुरु केवलमात्र एक शरीर नहीं, वह तो एक जीवंत तत्व है, जो कि स्थूल शरीर के मंडल को, जब चाहे, अपनी इच्छानुसार छोड़कर उच्चतर आत्मिक मंडलों में विचरता है। सत्गुरु का नूरी स्वरूप, जिसे 'गुरुदेव' कहा जाता है, मनुष्य की आत्मा को सत्गुरु द्वारा अभिव्यक्त नामों के सुमिरन के द्वारा जिस्म–जिस्मानियत के बंधनों से आज़ाद करा लेता है। सूक्ष्म मंडलों में, आत्मा गुरु (के दिव्य–रूप) के चुंबकीय प्रभाव से ही टिकी रहती है। इसीलिये सत्गुरु के आंतरिक दिव्य स्वरूप के 'चरण–कमलों' की भक्ति भी अनिवार्य है।

गुर के चरन हिरदै वसाए।। मन चिंतत सगले फल पाए।।
अगनि बुझी सभ होई सांति।। करि किरपा गुरि कीनी दाति।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰395)

गुर के चरण हिरदै वसाइ।। दुख दुसमन तेरी हतै बलाइ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰ 5, पृ॰190)

गुर के चरण रिदै उरि धारि।। अगनि सागरु जपि उतरहि पारि।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰192)

अंतर में प्रकट होने वाला सत्गुरु का नूरी स्वरूप वास्तव में धन्य है। सत्गुरु के नूरी 'चरण–कमलों' से निकलने वाली दिव्य–ज्योति शानदार होती है। पहले वही प्रकट होती है और उसके बाद ही गुरु का पूरा स्वरूप प्रकट होता है। क्योंकि यह (नूरी चरणों की) 'ज्योति' पूरे नूरी स्वरूप की अगुवाई करती है; इसलिए यह पूज्य और प्रिय है। साधक की उन्नति के साथ–साथ यह 'दिव्य–ज्योति' की चमक भी तेज़ होती जाती है। गोस्वामी

तुलसीदास जी, जो हिंदी रामायण ('श्रीरामचरितमानस') के सुप्रसिद्ध रचयिता हैं, इसके बारे में इस प्रकार वर्णन करते हैं :

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।

— रामचरितमानस (बाल–कांड दोहा 1, चौपाई 3)

हज़रत मुल्ला हुसैन काशिफ़ी इसके बारे में फ़रमाते हैं :

पीरे कि चू दर दिलत नशीनद,
हाले–अज़लो–अबद ब–बीनद।

— किताब–उल–बैअत (पृ.5)

(जब अंतर में पीर दर्शन देता है, व्यक्ति भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता हो जाता है।)

तकनीकि तौर पर यह 'फ़िना–फ़िल–शेख़' होने की अवस्था है यानी अपना व्यक्तित्व समाप्त करके सत्गुरु के व्यक्तित्व में मिला देना अर्थात शेख़ या सत्गुरु में अभेद्य हो जाना। इसके पश्चात् सत्गुरु और शिष्य के बीच द्वैत समाप्त हो जाता है और वे आत्मरूप में एकमेक हो जाते हैं। शिष्य वास्तव में 'गुरु का रूप' (Guru-man) बन जाता है। जब वह स्थूल चेतनता से ऊपर उठता है, सत्गुरु का सूक्ष्म दिव्यरूप प्रकट हो जाता है। सुमिरन के द्वारा जब सुरत की धाराएँ जिस्म से खिंच करके दो भौंहों के बीच एकत्र हो जाती हैं, तो अपने आप ही ज्योति प्रकट हो जाती है; और जब साधक और ऊपर चढ़ता है, तो गुरु का नूरी स्वरूप प्रकट हो जाता है। जब तक सत्गुरु का मार्गदर्शक नूरी स्वरूप प्रकट नहीं होता, साधक आत्मिक पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता और प्रभु की बादशाहत में नहीं जा सकता, क्योंकि गुरु प्रभु से पहले आता है और वही साधक को 'प्रभु की दरगाह' में ले जाता है। यह नूरी स्वरूप हमेशा ही शिष्य के साथ रहता है, चाहे वह शिष्य कहीं भी रहे और उसके रूहानी सफ़र में मददगार रहता है। उसे वह त्रिगुणात्मक मंडलों (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) से पार कराता है और उसे चौथे लोक— पारब्रह्म के परे सचखंड में ले जाता है, जोकि विशुद्ध आत्मिक मंडल है।

गुर के चरण ऊपरि मेरे माथे।। ता ते दुख मेरे सगले लाथे।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰187)

सफल मूरति गुरु मेरै माथै।।
जत कत पेखउ तत तत साथै।।
चरन कमल मेरे प्रान आधार।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰535)

जन के चरन वसहि मेरै हीअरै संगि पुनीता देही।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰680)

'गुरुदेव' यानी सत्गुरु के सूक्ष्म नूरी स्वरूप का प्रकट होना प्रभु का मात्र एक वरदान है। दिव्य कृपा द्वारा ही दीक्षित शिष्यों को यह अनमोल वरदान मिल पाता है।

चरन कमल सिउ रंगु लगा अचरज गुरदेव।।
जा कउ किरपा करहु प्रभ ता कउ लावहु सेव।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰814)

प्रभु के 'चरण-कमल' :

धर्मग्रंथों में प्रभु के 'चरण–कमलों' के उद्धरण भी मिलते हैं। उदाहरण के लिये :

हरि चरणी तूं लागि रहु गुर सबदि सोझी होई।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰3, पृ॰492)

हरि के चरन कमल मनि धिआउ।।

— आदि ग्रंथ (टोडी म॰5, पृ॰714)

प्रभु और सत्गुरु के 'चरण–कमलों' में वास्तव में कोई अंतर नहीं है। परन्तु 'चरण–कमल' शब्दों से तात्पर्य क्या है और इनका क्या महत्त्व है? इन शब्दों का केवलमात्र तात्पर्य है, 'शब्द–धुन' से, जिसे 'नाम', 'कलमा' अथवा 'वर्ड' भी कहा जाता है, जो सर्वोच्च मंडल से निकलता है और विभिन्न दर्जों की गहनता के मंडलों से गुज़रता हुआ सूक्ष्म मंडल के सबसे निचले स्तर यानी दो भौंहों के बीच के ठिकाने पर आकर गुँजार करता है और सत्गुरु नाम–दान के समय आत्मा को इससे जोड़ देते हैं।

नीकी राम की धुनि सोइ।।
चरन कमल अनूप सुआमी जपत साधू होइ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1228)

यहाँ पर 'चरण–कमल' शब्द 'शब्द धुन' का समानार्थक है, जो किसी सत्गुरु की कृपा से प्रकट की गई होती है और जिससे जुड़कर शिष्य में साधु (सधा हुआ) बन जाता है।

साँति सूख सहज धुनि उपजी साधू संगि निवासा जीउ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰105)

बंधन तोड़ि चरन कमल दृडाए एक सबदि लिव लाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰915)

संतों की परिभाषा में 'शब्द' की भक्ति ही सत्गुरु के 'चरण–कमलों' की भक्ति है, और जो 'शब्द' के संगीत में तल्लीन रहते हैं, वे 'जीवन–दायी जल' को पीते हैं, जो प्रभु के 'चरण–कमलों' में से बहता रहता है। वास्तव में, यहाँ पर 'चरण–कमल' से अभिप्राय 'संगीतमय ज्योति' से है, जो सत्गुरु के 'चरण–कमलों' से निकलती है, और जब वह अपने निज–घर की ओर जाते हुए सूक्ष्म और कारण मंडलों से गुज़रती है, तीर्थयात्री आत्मा का स्वागत करती है।

चरण कमल नानक रंगि राते हरि दासह पैज रखाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰5, पृ॰500)

जब आत्मिक साधना से प्रभु की कृपा भरी 'ज्योति' अंतर में प्रकट होती है, तो उसे भी 'प्रभु के चरण–कमल' ही कहा जाता है, क्योंकि यह उसके 'चरण–कमल' से ही निकलती है और उसकी ही 'चरण–धूलि' है।

चरण कमल रिद अंतरि धारे।। प्रगटी जोति मिले राम पिआरे।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰375)

'नाम' या 'शब्द' अलौकिक ज्योति का स्त्रोत है। 'नाम' की भक्ति ही उस प्रभु के चरणों की भक्ति है।

चलत बैसत सोवत जागत गुर मंत्रु रिदै चितारि।।
चरण सरण भजु संगि साधू भव सागर उतरहि पारि।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1006)

'चरण–कमलों' की महानता ही सर्वस्व है और यही जीवन का सार है।

चरन कमल की मउज महि रहउ अंति अरु आदि।।

— आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ॰1370)

प्रभु के 'चरण–कमलों' के सौन्दर्य व परमानंद का कोई वर्णन नहीं कर सकता, परन्तु उस में से निकलते परमानंद का कुछ अनुभव हमें मिल सकता है :

कबीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमान।।
कहिबे कउ सोभा नही देखा ही परवानु।।

— आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ॰1370)

'ज्योति' और 'नाद–ध्वनि' की धारा के साथ लगातार संपर्क होने से, हम हमेशा ही 'चरण–कमलों' के साथ भक्तिभाव से जुड़े रह सकते हैं और उससे अकथ लाभ उठा सकते हैं।

चरण कमल जन का आधारो।। आठ पहर राम नामु वापारो।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰107)

चरन कमल अधारु जन का रासि पूंजी एक।।
ताणु माणु दीबाणु साचा नानक की प्रभ टेक।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰675)

मीतु सखा सहाइ संगी ऊच अगम अपारु।।
चरण कमल बसाइ हिरदै जीअ को आधारु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰405)

चरन कमल का आसरा प्रभ पुरख गुणतासु।।
कीरतन नामु सिमरत रहउ जब लगु घटि सासु।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰818)

तरण सागर बोहिथ चरण तुमारे तुम जानहु अपुनी भाते।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰209)

भै बोहिथ सागर प्रभ चरणा केते पारि लघाए।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰577)

बोहिथड़ा हरि चरण मन चड़ि लंघीऐ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰398)

वे 'चरण–कमल' मन की गहराइयों में प्रकट होते हैं :

स्रवणी कीरतनु सिमरनु सुआमी इहु साध को आचारु।।
चरन कमल असथिति रिद अंतरि पूजा प्रान को आधारु।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1222)

चरन कमल बसिआ रिद भीतरि सासि गिरासि उचारिओ।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰534)

जिस पर प्रभु कृपा करे, सिर्फ़ वही 'चरण–कमलों' की अराधना में लग सकता है :

सभ परोई इकतु धागै।। जिसु लाइ लए सो चरणी लागै।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰108)

करि किरपा प्रभ नदरि अवलोकन अपुनै चरणि लगाई।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰384)

'चरण–कमलों' की दौलत सत्गुरु की ओर से उपहार स्वरूप मिलती है और वह स्वयं ही उसे शिष्य के अंतर में प्रकट करता है।

चरण कमल सिउ लागो मानु।।
सतिगुरि तूठै कीनो दानु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰376)

हउ बलि बलि बलि बलि चरन कमल कउ बलि बलि गुर दरसाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1212)

चरण कमलु गुरि धनु दीआ मिलिआ निथावे थाउ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰48)

साधु और संतों की संगति के द्वारा ही अंतर में 'चरण–कमल' प्रकट होते हैं :

साधसंगि होआ परगासु।।
चरन कमल मन माहि निवासु।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰5, पृ॰1340)

मन में 'चरण–कमल' कैसे प्रकट हो पाते हैं? सुमिरन के द्वारा ही 'चरण–कमल' अंतर में प्रकट होते हैं।

हरि सिमरत सभि मिटहि कलेस।। चरण कमल मन महि परवेस।।
उचरहु राम नामु लख बारी।। अंमृत रसु पीवहु प्रभ पिआरी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰194)

साधसंगमि गुण गावह हरि के रतन जनमु नही हारिओ।।
प्रभ गुन गाइ बिखै बनु तरिआ कुलह समूह उधारिओ।।
चरन कमल बसिआ रिद भीतरि सासि गिरासि उचारिओ।।
नानक ओट गही जगदीसुर पुनह पुनह बलिहारिओ।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰534)

जब आध्यात्मिक अभ्यास के द्वारा पूरे शरीर में व्याप्त सुरत या चेतनता की धाराएँ आत्मा के ठिकाने यानी दो भ्रूमध्य एकत्र हो जाती हैं, तो 'चरण–कमल' यानी 'नाम' प्रकट हो जाता है। अंतर के उस सुंदर संगीत में आत्मा इतनी मस्त हो जाती है कि वह अपने आप को भूल जाती है, और उसके और प्रभु के बीच में ऐसी एकात्मकता हो जाती है कि उन्हें कभी भी पृथक् नहीं किया जा सकता। जीवात्मा उस प्रत्यक्ष 'सत्' में इतनी गुम हो जाती है कि उसके बाद संसार के सभी आकर्षण उसके लिए समाप्त हो जाते हैं और उसे अपने उद्देश्य से नहीं हटा सकते।

सत्गुरु के 'चरण–कमल' अद्‌भुत रूप से प्रकाशवान होते हैं। कोई बिरला साधु–महात्मा ही बड़े भाग्यों से उस प्रकाश को देख पाता है। ये भक्त के हृदय में, यानी दो भ्रूमध्य (दो भौंहों के बीच) और थोड़ा पीछे की ओर प्रकट होते हैं।

चरन कमल आनूप हरि संत मंत।। कोऊ लागै साधू।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰380)

चरन कमल भगताँ मनि वुठे।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰109)

यदि कोई 'चरण–कमलों' के संपर्क में आ जाता है, तो उसे सभी शुभ कर्मों, तीर्थयात्राओं और भक्ति तथा दान आदि का फल स्वयं ही मिल जाता है।

चरण भजे पारब्रहम के सभि जप तप तिन ही कीति।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म°5, पृ°48)

प्रभ के चरन मन माहि धिआनु।।
सगल तीरथ मजन इसनानु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म°5, पृ°195)

हरि नामु लीजै अमिउ पीजै रैणि दिनसु अराधीऐ।।
जोग दान अनेक किरिआ लगि चरण कमलह साधीऐ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म°5, पृ°925)

कामि क्रोधि अहंकारि माते विआपिआ संसारु।।
पउ संत सरणी लागु चरणी मिटै दूखु अंधारु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म°5, पृ°51)

गुर के चरण कमल मन धिआइ।। दूखु दरदु इसु तन ते जाइ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म°5, पृ°741)

सुख सीगार बिखिआ के फीके तजि छोडे मेरी माइ।।
कामु क्रोधु लोभु तजि गए पिआरे सतिगुर चरनी पाइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म°5, पृ°431)

हउमै मारि मंनि वसाइआ।। गुर चरणी सदा चितु लाइआ।।
गुर किरपा ते मनु तनु निरमलु निरमल नामु धिआवणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म°3, पृ°110)

हउ वारी जीउ वारी गुर चरणी चितु लावणिआ।।
सतिगुरु है अंमृत सरु साचा मनु नावै मैलु चुकावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म°3, पृ°113)

गुर चरनी मनु लागा।। ता जम का मारगु भागा।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म°1, पृ°599)

जिउ पाखाणु नाव चड़ि तरै।। प्राणी गुर चरण लगतु निसतरै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म°5, पृ°282)

चरन कमल गुर के जपत हरि जपि हउ जीवा।।
पारब्रहमु आराधते मुखि अंमृतु पीवा।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म°5, पृ°815)

जत कत पेखउ तेरी सरणा।। बलि बलि जाई सतिगुर चरणा।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1149)

रहै निरालमु एका सचु करणी।। परम पदु पाइआ सेवा गुर चरणी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰1, पृ॰227)

❀❀❀

अध्याय

: **15** :

चरण-धूलि

'चरण-धूलि' शब्द धर्म–ग्रन्थों में 'चरण–कमल' के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया गया है और दोनों ही शब्द एक ही वस्तु को दर्शाते हैं।

जीवित सत्गुरू के 'चरण–कमलों' की धूलि :

जैसे जीवित सत्गुरु का महत्त्व सर्वोच्च है, वैसे ही उसकी 'चरण–धूलि' की भी आवश्यकता है। दिव्य इंसानी–स्तंभ के संपर्क में जो कोई भी आता है, वह धन्य है– चाहे उसके कपड़ों का पल्लू हो या उनके बैठने के लिए इस्तेमाल होने वाली कुर्सी या दरी–ग़लीचा या फिर उनकी सवारी के लिए इस्तेमाल होने वाला घोड़ा या अन्य वस्तुएँ, जिन्हें वे किसी न किसी काम के लिये प्रयोग में लाते हैं। मसीह के कपड़ों के किनारे को छूने मात्र से ही अनेक लोग कोढ़ या अंधेपन से ठीक हो गये थे।

जितनी स्रिसटि तुमरी मेरे सुआमी
सभ तितनी लोचै धूरि साधू की ताई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1263)

सरब कलिआण चरण प्रभ सेवा।। धूरि बाछहि सभि सुरि नर देवा।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1138)

संकरु नारदु सेखनाद मुनि धूरि साधू की लोचीजै।।
भवन भवन पवितु होहि सभि जह साधू चरन धरीजै।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1326)

एक मुस्लिम सूफ़ी संत, शम्स तबरेज़ हमें बतलाते हैं :

चश्म रौशन कुन ज़ि ख़ा–औलिया,
ता बिबीनी ज़ि इब्तदाता इन्तहा।

सुरमा कुन तू ख़ाके-ईं बगुज़ीदा रा,
हम बसूज़द हम बसाजद दीदा रा।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 4, पृ.321)

(संत की 'चरण-धूलि' से अपने नेत्रों को ज्योतिर्मय कर लो, जिससे तुम समस्त ब्रह्मांड को देख सकोगे। प्रभु के चुने हुए प्रतिनिधि की 'चरण-धूलि' से अपनी आँखों के लिए सुरमा बना लो, जिससे तुम पवित्र होकर प्रभु को देखने योग्य हो जाओगे।)

जहाँ कहीं भी प्रभु का चुना हुआ प्रतिनिधि यानी संत-सत्गुरु अपना डेरा जमा लेता है, वह स्थान पवित्र हो जाता है और समय के साथ वह तीर्थस्थल बन जाता है। वास्तव में सभी पवित्र स्थान किसी न किसी प्रभु रूप महापुरुष के कारण ही अस्तित्व में आये– जैसे ननकाना साहिब, पंजा साहिब और करतारपुर की पवित्रता गुरु नानक जी की वजह से है, जो कि इन स्थानों के साथ क़रीबी से जुड़े हुए थे। अमृतसर गुरु रामदास जी और गुरु अर्जनदेव जी के कारण अस्तित्व में आया। इसी तरह से, मक्का और मदीना का रूहानी प्रभाव मुहम्मद साहिब की वजह से है। पवित्र येरुशालेम शहर की महत्ता यहूदी पैग़म्बरों और राजा डेविड के कारण हुई। बनारस, हरिद्वार और इलाहबाद शहर, जो गंगा नदी के तट पर बसे हैं और जहाँ पुरातन ऋषियों ने प्रभु का ध्यान किया, अब हिंदुओं का ध्यान आकर्षित करते हैं, जो सालों-साल धामृक लाभ पाने के लिये वहाँ आते हैं। सारनाथ और बोध गया महात्मा बुद्ध के कारण ही अभी तक सम्मानित किये जाते हैं। इन विभिन्न स्थानों के अवशेषों को अभी तक राजनैतिक राज्याध्यक्षों द्वारा सम्मानित किया जाता है और उन्हें बचाने के लिये स्मृतिगृह बनाये जाते हैं। लेकिन प्रभु के चुने हुए महापुरुष को किसी धामृक स्थान की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत, ऐसे स्थानों की पवित्रता उन्हीं के कारण से है। वास्तव में, प्रभु-रूप महापुरुष एक चलता-फिरता तीर्थस्थल होता है।

किसी स्थान (तीर्थस्थल) की शोभा (पवित्र) इंसान की वजह से होती है, परन्तु किसी इंसान की शोभा स्थान की वजह से नहीं।

– अगेसिलाउस महान

जितने तीरथ देवी थापे सभि तितने लोचहि धूरि साधू की ताई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1263)

गंगा जमुना गोदावरी सरसुती ते करहि उदमु धूरि साधू की ताई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1263)

संतों की 'चरण–धूलि' से अड़सठ तीर्थों के लाभ मिलते हैं :

संत कृपा ते मिटे मोह भरम।।
साध रेण मजन सभि धरम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰183)

तृपति अघावनु साचै नाइ।। अठसठि मजनु संत धूराइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰377)

दरसनु देखि भई मति पूरी।।
अठसठि मजनु चरनह धूरी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰1, पृ॰224)

कोटिन कोटनि मणि को चमतकार वारउ,
ससीअर सूर कोट कोटिन प्रगास जी।
कोटिन कोटानि भागि पूरन प्रताप छबि,
जगि मगि जोति है सुजासु निवास जी।
सिव सनकादिक ब्रहमादिक मनोरथ कै,
तीरथ कोटानि कोट बांछत है तास जी।
मसतकि दरशन सोभा को महातम अगाधि बोधि,
स्री गुर चरन रज मात्र लगै जास जी।

— भाई गुरदास, कबित्त–सवैये (421)

जब व्यक्ति जीवित संत के सामने नम्रता और श्रद्धा से झुकता है, उसे सभी तीर्थ स्थानों की यात्रा का फल अपने आप मिल जाता है। ऐसे संत की 'चरण–धूलि' के कारण साधक ब्रह्मांडीय चेतनता पा जाता है और सच्चे मा'नो में आस्तिक हो जाता है।

प्रभ दइआल किरपाल हजूरि।।
नानकु जीवै संता धूरि।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰676)

नानकु मंगै दानु हरि संता रेनारु।।
होरु दातारु न सुझई तू देवणहारु।।

— आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार म॰ 4, पृ॰556)

संत धूरि पाईऐ वडभागी।। नानक गुर भेटत हरि सिउ लिव लागी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰193)

इहु मनु देइ कीए संत मीता कृपाल भए वडभागी।।
महा सुखु पाइआ बरनि न साकउ रेनु नानक जन पागी।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰5, पृ॰1267)

जितनी सृसटी तुमरी मेरे सुआमी सभ तितनी लोचै धूरि साधू की ताई।।
नानक लिलाटि होवै जिसु लिखिआ तिसु साधू धूरि दे हरि पारि लंघाई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1263)

आदि जुगादि भगत जन सेवक ता की बिखै अधारा।।
तिन जन की धूरि बाछै नित नानकु परमेसरु देवनहारा।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰532)

अंतरजामी सो प्रभु पूरा।। दानु देइ साधू की धूरा।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰563)

जन की धूरि मन मीठ खटानी।। पूरबि करमि लिखिआ धुरि प्रानी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰199)

सतिगुर की रेणु वडभागी पावै।। नानक गुर कउ सद बलि जावै।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰741)

जिन्ह के भाग बडे है भाई तिन्ह साधू संगि मुख जुरे।।
तिन्ह की धूरि बाँछै नित नानकु प्रभु मेरा किरपा करे।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1208)

तिन की रेणु मिलै तां मसतकि लाई जिन सतिगुरु पूरा धिआइआ।।
नानक तिन की रेणु पूरै भागि पाईऐ जिनी राम नामि चितु लाइआ।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰3, पृ॰1131)

सत्गुरू के दिव्य स्वरूप की 'चरण-धूलि' :

सूक्ष्म मंडल में सत्गुरु के दिव्य स्वरूप के चरणों से जो ज्योति निकलती है, उसे प्राय: उस स्वरूप की 'चरण–धूलि' कहा जाता है।

अंमृतु नामु निधानु भोजनु खाइआ।।
संत जना की धूरि मसतकि लाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰652)

संत तुलसी साहिब इस के बारे में बतलाते हैं :

छच्छा छिन छिन सुरति सम्हार लार दृग के रहो।
तन मन दरपन मांज साज सुत से गहो।।
लगन लगै लख पार सार तब पाया।
अरे हां रे तुलसी संत चरन की धूरि नूर दरसाया।।

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1 (ककहरा, पृ.25)

'आंतरिक धूलि' क्या है? :

सिक्ख धर्मग्रन्थों में इसे अमर और सदा रहने वाला 'नाम' या 'शब्द' कहा गया है।

बिनवंति नानक धूरि साधू नामु प्रभू अमोलई।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰691)

केसा का करि बीजना संत चंउरु ढुलावउ।।
सीसु निहारउ चरण तलि धूरि मुखि लावउ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰745)

हम में से प्रत्येक के अंदर 'संतों की धूलि' मौजूद है। हम अपने अंतर में मौजूद 'प्रभु की ज्योति' के कारण ही जीवित हैं, जिसे तकनीकी तौर से 'चरण–धूलि' कहा जाता है। इसके अंदर 'शब्द–ध्वनि' या 'उद्गीथ' है— जो अमर जीवन प्रदान करने वाली प्रभु की सत्ता है।

प्रभु की 'चरण–धूलि' अनमोल और अद्वितीय उपहार है, जिसे पाने के लिये हम प्रार्थना और यत्न कर सकते हैं। देवी–देवता और ऋषि–मुनि, सभी उसे पाने की आकांक्षा रखते हैं।

मेरै माथै लागी ले धूरि गोबिंद चरनन की।।
सुरि नर मुनि जन तिनहू ते दूरि।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी भगत नामदेव, पृ॰694)

'साधु की धूलि' के अंदर अनंत तीर्थ यात्राओं, व्रत और जागरणों तथा अनंत यौगिक उपासनाओं का फल निहित है :

तीरथ वरत लख संजमा पाईऐ साधू धूरि।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰5, पृ॰48)

इन उद्धरणों के अलावा, जो कि 'साधु की धूलि' से संबंधित हैं, अन्य उद्धरण भी हैं, जो 'गुरु–सिक्ख की धूलि' का हवाला देते हैं।

जनु नानकु धूडि मंगै तिसु गुरसिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰306)

यह 'धूलि' जीवन का 'अमृत' है और मुक्ति प्रदान करती है— इस लोक में भी और परलोक में भी।

'चरण–धूलि' के लाभ :

(क) **इससे साधक के तमाम दुख-दर्द और बिछोड़े की पीड़ा नष्ट हो जाती है :**

से धंनु वडे सत पुरखा पूरे जिन गुरमति नामु धिआइआ।।
जनु नानकु रेणु मंगै पग साधू मनि चूका सोगु विजोगु जीउ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰445)

किलबिख बिनासे दुख दरद दूरि।। भए पुनीत संतन की धूरि।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰387)

सगल दूख का डेरा भंना संत धूरि मुखि लाई।।
पतित पुनीत कीए खिन भीतरि अगिआनु अंधेरु वंञाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰915)

(ख) **यह काम और अहंकार को नष्ट कर देती है :**

गुर की रेणु नित मजनु करउ।।

जनम जनम की हउमै मलु हरउ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰239)

साधू धूरि लाई मुखि मसतकि काम क्रोध बिखु जारउ।।
सभ ते नीचु आतम करि मानउ मन महि इहु सुखु धारउ।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰532)

(ग) युगों-युगों की जमा गंदगी को दूर करके यह पापों को नष्ट करती है और मन को पवित्र करती है :

तेरी सरणि सतिगुर मेरे पूरे।। मनु निरमलु होइ संता धूरे।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰5, पृ॰563)

नेत्र पुनीत भए दरसु पेखे हसत पुनीत टहलावा।।
रिदा पुनीत रिदै हरि बसिओ मसत पुनीत संत धूरावा।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1212)

गंगा जमुना गोदावरी सरसुती ते करहि उदमु धूरि साधू की ताई।।
किलविख मैलु भरे परे हमरै विचि हमरी मैलु साधू की धूरि गवाई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1263)

संत रेनु निति मजनु करै।। जनम जनम के किलबिख हरै।।

— आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1300)

धूरि संतन की मसतकि लाइ।।
जनम जनम की दुरमति मलु जाइ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰897)

(घ) इससे सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं और मन की गुप्त इच्छाएँ भी मिट जाती हैं :

गुर चरण लागी सहजि जागी सगल इछा पुंनीआ।।
मेरी आस पूरी संत धूरी हरि मिले कंत विछुंनिआ।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰846)

करि किरपा हरि मेलिआ मेरा सतिगुरु पूरा।।
इछ पुंनी जन केरीआ ले सतिगुर धूरा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी बैरागनि म॰4, पृ॰168)

(च) यह शांति और आनंद की अग्रदूत है, जन्म-मरण के चक्र से आज़ादी दिला देती है और साधक को काल के दायरे से बचा लेती है :

फिरत फिरत तुम्हरै दुआरि आइआ भै भंजन हरि राइआ।।
साध के चरन धूरि जनु बाछै सुखु नानक इहु पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰5, पृ॰497)

हरि का नामु जपहु मेरे मीता इहै सार सुखु पूरा।।
साधसंगति जनम मरणु निवारै नानक जन की धूरा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी माला म॰5, पृ॰215)

नमसकार रखनहार मनि अराधि प्रभू मेक।।
संत रेनु करउ मजनु नानक पावै सुख अनेक।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰5, पृ॰1341)

दरसनु पेखत होइ निहालु।। जा की धूरि काटै जम जालु।।
चरन कमल बसे मेरे मन के।। कारज सवारे सगले तन के।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰900)

कहु नानक जिनि धूरि संत पाई।। ता कै निकटि न आवै माई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰182)

(छ) यह लाखों आत्माओं को बचाने में सहायक होती है और इससे साधक जीवन-मुक्त या जीते-जी मुक्त हो जाता है :

साधू धूरि मुखि मसतकि लाई।।
नानक उधरे हरि गुर सरणाई।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰744)

गुरु सेवनि सतिगुरु दाता हरि हरि नामि समाइआ राम।।
हरि धूडि देवहु मै पूरे गुर की हम पापी मुकतु कराइआ राम।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰772)

हरि रंगि राता मनु राम गुन गावै।। मुकतो साधू धूरी नावै।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰5, पृ॰1340)

जन नानक कउ प्रभ किरपा करीऐ।। साधू धूरि मिलै निसतरीऐ।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰804)

(ज) **इससे आंतरिक दृष्टि खुल जाती है, जिसके द्वारा साधक सर्वव्यापी प्रभु सत्ता को सभी जगह देखने लगता है :**

तेरिआ संत जना की बाछउ धूरि।।
जपि नानक सुआमी सद हजूरि।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰5, पृ॰1183)

इहु मनु होआ साध धूरि।। नित देखै सुआमी हजूरि।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰5, पृ॰1184)

(झ) **इससे इस लोक में और परलोक में आनंद मिलता है और प्रभु के दरबार में मान मिलता है :**

जिन हरि अरथि सरीरु लगाइआ गुर साधू बहु सरधा लाइ मुखि धूडा।।
हलति पलति हरि सोभा पावहि हरि रंगु लगा मनि गूडा।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰4, पृ॰698)

सतिगुर पग धूरि जिना मुखि लाई।।
तिन कूड तिआगे हरि लिव लाई।। ते हरि दरगह मुख ऊजल भाई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰4, पृ॰165)

हरि दरगह ते मुख उजले बहु सोभा पाई।।
जनु नानकु मंगै धूडि तिन जो गुर के सिख मेरे भाई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰310)

(ट) **इसके द्वारा सहज समाधि की अवस्था प्राप्त होती है :**

सूख सहज आनंद घणा नानक जन धूरा।।
कारज सगले सिधि भए भेटिआ गुरु पूरा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰399)

(ढ) **इसके द्वारा इंसान 'सत्' (परम सत्य) में अभेद्य हो जाता है :**

कर संगि साधू चरन पखारै संत धूरि तनि लावै।।
मनु तनु अरपि धरे गुर आगै सति पदारथु पावै।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰381)

इसके द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त हो जाती है और सभी घातक बुराइयाँ अपने आप दूर हो जाती हैं। प्रकृति, जो प्रभु की दासी है, ऐसे

साधक की ग़ुलाम हो जाती है। आंतरिक दृष्टि के खुलने से साधक प्रभु को सर्वत्र देखने लगता है तथा उसका 'चेतन सहकर्मी' ('Conscious Co-worker') बनकर उसकी कृपा भरी उपस्थिति में शेष जीवन प्रसन्नतापूर्वक गुज़ारता है।